सिद्धयोग

2017

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

एकप्रति : 20/- त्रिवार्षिक : 360/-

प्रकाशन तिथि : 01.05.2017

वर्ष : 50; अंक : 2
मई, 2017

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन बेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।

मुण्डकोपनिषद् 2/4

यहाँ ओंकार ही धनुष हैं; आत्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। वह प्रमाद रहित मनुष्य द्वारा ही बींधा जाने योग्य है। अत: उसे भेजकर वाण की तरह उस लक्ष्य में तन्मय हो जाना चाहिये।

● ● ●

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमदाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

(गीता 16/23)

जो वेद शास्त्र विहित विधि को छोड़कर (कामना से प्रेरित होकर) मनमाना काम करते हैं, उनको न तो फल की सिद्धि होती है, न सुख मिलता है, न मोक्ष की ही प्राप्ति होती है।

● ● ●

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।

(गीता 8/15)

श्री भगवान के शरणापन्न होने पर दु:खों के कारणभूत क्षणभंगुर पुनर्जन्म को अर्थात् संसार को महापुरुष प्राप्त नहीं होते। परम सिद्धि अर्थात् भगवत्–लोक को प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ से फिर संसार में आना ही नहीं होता।

● ● ●

योगयुक्त्या तु तद्भस्म दलाव्यमानं समन्ततः।
शाक्तेनामृतवर्षेण ह्यधिकारान्निवर्तते।।

(बृहज्जावालः)

जो योगानुष्ठान के द्वारा शक्ति की अमृत वर्षा से उस भस्म को चारों ओर से प्लावित कर देता है वह प्रकृति के अधिकार से मुक्त हो जाता है।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष :50
अंक : 2

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

मई
2017

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वधियो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भ पश्यत जायमानं
स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु।

जो रुद्र इन्द्रादि देवताओं को उत्पन्न करने वाला और बढ़ाने वाला है तथा जो सबका अधिपति और महान ज्ञानी (सर्वज्ञ) है। जिसने सबसे पहले उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भ को देखा था, वह परमदेव परमेश्वर हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करें।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 8
3. श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा– डॉ. विजय सिंह 11
4. लल्ला, अब कभी शेर मिलेगा नहीं– जगदीश राए बंसल 14
5. पत्रं–पुष्पं–फलं–तोयम्– चाणक्य नीति से 17
6. योग विद्या और गुरु तत्व– दिनेश चन्द शर्मा 19
7. छात्र जीवन में योग की आवश्यकता– अनील दुबे 23
8. आश्रम समाचार 25
9. हमारे आपके श्री सद्गुरुदेव भगवान त्रिलोकी नाथ के स्वामी– अमरनाथ 27
10. साक्षी कोदण्डपाणि– श्री केशव उपाध्याय 30
11. गुरुदेव का प्रेम– श्री विष्णु प्रसाद व्यास 33
12. योग से आत्मसाक्षात्कार– राजकुमार रघुवंशी 36
13. जन्म मरण छुड़वाया– आचार्य बृजमोहन 39
14. योग–आसन 40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख

निरोध एवं वृत्ति सारूप्य

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

पातंजली योग दर्शन के कर्त्ता भगवान पातंजली ने योग दर्शन के प्रारंभ में ही **'अथ योगानुशासनाम '** इस सूत्र के बाद दूसरे 'सूत्र' **योगाश्चित वृत्ति निरोधः** कहकर योग की सही परिभाषा लिखी है। योगाभ्यास करने वाला साधक क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़ एवं एकाग्र रूप चित्त भूमिकाओं से निकलता हुआ निरोधावस्था को प्राप्त होता है। वहीं जीवात्मा की कैवल्य स्थिति है। दूसरे शब्दों में इसी का नाम निर्जीव समाधि है एवं स्वरूप स्थिति कहा गया है। निरोध समाधि में जीवात्मा किस स्थिति में रहा करता है, इसका स्पष्ट निर्देश करते हुये भगवान पातंजली देव ने बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कह दिया **' तदाहष्टु स्वरूपे व स्थानम '** अर्थात् समाधि स्थिति में जीवात्मा अपने स्वरूप में स्थित रहा करता है स्वरूप स्थिति क्या चीज है ? इसका स्पष्टीकरण करते हुये भगवान व्यास देव ने इस सूत्र के भाष्य में केवल मात्र एक छोटी सी पंक्ति लिखी है।

स्वरूप प्रतिष्ठा तदानीम् चिति शक्तिर्यथा कैवल्ये अर्थात् तदानी स्थितौ स्वरूप प्रतिष्ठा तावत् की दृशी यथा कैवल्ये चितशक्तिः भवति।

अर्थात्– उस निरोध समाधि में जिसका नाम निर्जीव स्थिति व स्वरूपा व स्थान के रूप में वर्णन किया है। उस स्थिति में चित्त शक्ति अर्थात् जीवात्मा किस स्थिति में रहा करता है, इसका उत्तर केवल मात्र दो ही शब्दों में दिया गया कि– यथा कैवल्य मोक्ष में जीवात्मा हुआ करता है, उसी का नाम स्वरूप स्थिति कहा गया है उस स्थिति में पहुँचने पर जीवात्मा के सब दुःख द्वन्द्व छूट जाते हैं और उसका स्वयं स्वरूपावस्थान हो जाता है। यहाँ पर एक प्रश्न पैदा होता है। हमारे शास्त्रों में एवं श्री मद्भगवद्गीता में अखिल लोक पवन जगदात्मा श्री कृष्ण ने अछेय अभेद्य आदि कहकर इसको विकाररहित बतलाया है :–

कि इस आत्मा को शस्त्र काटते नहीं हैं अग्नि जलाती नहीं है पानी इसको गीला नहीं करता वायु सुखा नहीं सकता यह अछेद्य है अदाह्य है अक्लेद्य एवं अशोष्य है यह आत्मा सर्वत्र ओत–प्रोत रहने वाला निश्चित अचल और सनातन है यह अव्यक्त, अचिन्तय, एवं अविकारी कहा गया है यह सब आत्मा के स्वरूप की बातें समझाकर भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को सीधे और स्पष्ट शब्दों में कह दिया।

तस्मादेवं विदित्वैनं नानू शोचितु मर्हसि।

अर्थात्– हे अर्जुन इस आत्मा के उपरोक्त उपदेश को सुनकर एवं अन्यान्य औपनिषदिक सिद्धांत को समझा कर आत्मा की स्थिति निर्विकार एवं सब प्रकार से शुद्ध है। किन्तु योग दर्शन के **तदा दृष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्** पर भाष्य लिखते हुये समाधि में आत्मा की स्वरूप स्थिति बतला कर 'व्युत्थान चित्तु सति तथापि भवन्ति न तथा, अर्थात व्युत्थान चित्त में चित्त शक्ति अभेद्य रहते हुये भी वैसी नहीं होती, क्योंकि वह दर्शित विषया बन जाती है इस स्थिति को भगवान पातंजली देव ने वृत्ति सारूप्य कहा है। यथा **'वृत्ति सारूप्य मितरत्र'** अर्थात् इतरत्र व्युत्थानावस्था में चैतन्य आत्मा को वृत्ति सारूप्य हो जाता है। निरोध जैसी स्थिति नहीं रहती ऐसी स्थिति में विकार रहित शुद्ध चेतन आत्मा विकारी सा दीखने लगता है और वह अपने सब कार्य बुद्धि बोध के अनुसार किया करता है। स्वरूपोपलब्धि ही के बहुत से उपायों का वर्णन हमारे शास्त्रों में मिलता है किन्तु ऊँची–ऊँची ज्ञान भूमिकाएँ एवं निर्जीव समाधि में भी पहुँच जाने के बाद भी ज्यों ही चेतनशक्ति बुद्धि बोध को प्राप्त होती हैं त्यों ही वह वृत्ति सारूप्य होने से जैसे जिसकी अन्त:करण की वृत्ति होती है वैसे ही वह प्राणी चेष्टायें करने लगता है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने इसका संकेत **'सदृशं चेष्टते स्वस्या प्रकर्तेज्ञान वानपि'** कह कर दिया है, **प्रकृति यान्ति भूतानि निगृहः किं करिष्यति** अर्थात ज्ञानी पुरुष भी अपने आप को नित्य शुद्ध बुद्ध मनन करते हुये भी जैसा उसका बुद्धि बोध है वैसी–वैसी हरकते किया करता है।

यही कारण है बड़ी ऊँची स्थिति को प्राप्त हुये महात्माओं के चरित्र उनकी अपनी–अपनी प्रकृति के अनुसार दिखलाई देते हैं। भगवान राम की मर्यादा पुरुषोत्तमता जगदात्मा श्री कृष्ण की लीला उनकी अपनी स्वीकार की गयी कृति की परिचायक है। मेरे गुरूदेव योग योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज वृत्ति सारूप्य का पूरा–पूरा स्वरूप समझा देने वाला एक उदाहरण अपने मुखारविन्द से बतलाया करते थे, वृत्ति सारूप्य के स्वरूप को समझाने के लिये मैं उसको यहाँ लिख देना उचित समझता हूँ।

सुंदरसिंह डाकू का उदाहरण– ऋषि से लगभग 7 या 8 मील ऊपर भगवती भागीरथी के पवित्र तट पर ब्रह्मपुरी नाम का एक जंगल है हिमालय की यात्रा करते हुए सबसे प्रथम ऋषिकेष से चलने के बाद मेरे गुरुदेव योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज ने कुछ समय इस जंगल में निवास किया था। जिन दिनों श्री प्रभुजी इस वन में निवास किया करते थे उन्हीं दिनों महात्मा कृपालानंद नाम के एक सिद्ध योगीराज भी निवास किया करते थे उन्होंने अपने आपको शिवमय बना लिया था।

भगवान शिव की शक्तियों पर उनका पूर्ण अधिकार था वे महात्मा अणिमादिक ऐश्वर्यों से सब प्रकार से परिपूर्ण एवं कर्त्तुमाकुर्तम अन्यथा कर्तुम की ताकत वाले सर्व–समर्थ महात्मा थे। उन्हीं दिनों सुंदर सिंह नाम का एक डाकू कहीं से डाका मारकर कई हजार का सुनहरी जेवरात लूटकर वहाँ लाया। वह चाहता था कि उस कीमती जेवर को कहीं जंगल में छिपा दें और समय आने पर पुनः वहाँ से निकाल ले जायें उस डाकू का कोई पूर्वपुण्य उदय हुआ। जिसके फलस्वरूप कहीं से घूमते हुये योगीराज श्री कृपालानंद जी अकस्मात उधर से आ निकले।

उन्होंने उस डाकू की उस क्रिया को देख लिया और उससे कहा कि तू यह क्या कर रहा है उसने जवाब दिया कि महाराज मैं डाकू हूँ डाका मारकर कुछ धन यहाँ ले आया हूँ और उसको यहाँ दबा रहा हूँ ताकि कालान्तर में आवश्यकता पड़ने पर मैं यहाँ से निकाल ले जाऊँ। महाराज मैं डाकू हूँ और यह मेरी वृत्ति है। योगीराज श्री कृपालानंद जी को उसकी सत्यवादिता एवं विनय पर स्वाभाविक प्रसन्नता आ गयी और उन्होंने कहा कि डाकू क्या तू हमारी इस आज्ञा से इस कुकर्म को छोड़ देगा और जो कुछ हम कहेंगे वह काम करेगा। उस डाकू ने योगीराज की इस बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया और निः संकोच कह दिया कि प्रभो आप जो भी कुछ कहेंगे मैं उसका सदा सर्वथा बिल्कुल पालन करने को तैयार हूँ, आज्ञा कीजिये कि मैं क्या करूँ।

योगीराज कृपालानंद ने किसी पूर्व पुण्य वश उस डाकू के विनय पूर्वक वचनों को सुनकर आज्ञा दी कि अच्छा यह जितना जेवर तुम यहाँ छुपाने के लिये लाये हो उसको उठा लाओ और हमारे साथ चलो उस डाकू ने अपना सौभाग्य समझकर तत्काल योगीराज की आज्ञा को मान लिया और सुनहरी जेवर की गठरी को उठाकर उनके साथ चल दिया महात्मा उसको गंगा किनारे ले गये और वहाँ ले जाकर आज्ञा दी कि अच्छा अब इस सब जेवर को यहाँ से गंगाजी में ही फेंक दो। डाकू ने योगीराज की आज्ञा को मानकर सब जेवर गंगाजी में फैंक दिया और स्वयं निर्द्वन्द हो गया। योगीराज श्री कृपालानंद जी की अहैतुकी कृपा से उसी समय से वह संप्रज्ञात का विद्यार्थी बन गया और उत्तरोतर उसका आत्मोत्थान होने लगा। योगीराज कृपालानंद जी ने उस सुंदर सिंह नाम के डाकू को योगीराज सुंदर गिरी नाम में परिवर्तित कर दिया। शनैः-शनैः अपने तीव्रतम योगाभ्यास एवं शुभाचरण के फलस्वरूप वह अणिमादिक सकल ऐश्वर्यो को पा गया किन्तु योगीराज सुंदर गिरी के सर्व समर्थ हो जाने के बाद ही वृत्ति सारूप्य के फलस्वरूप जिस समय वह अपनी निर्जीव समाधि से उठकर वृत्ति सारूप्य को प्राप्त होते त्योंहि अपने डाकू स्वभाव के अनुसार चेष्टायें किया करते थे क्योंकि **स्वभावोहि दु:स्त्यजः पुंसाम** क्यों कि स्वभाव एक प्रकार से वृत्ति सारूप्य ही है। इसी बात को संकेत करते हुये भगवान जगदात्मा श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को स्पष्ट शब्दों में कह दिया है।

स्वभावजेन कौन्तेय निवद्धः स्वेन कर्मणा
कर्त्तु नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यसि नशोऽपि तत्।।

अर्थात्– हे अर्जुन मनुष्य अपने स्वभाव से निवद्ध है। जिस कर्मो को तू मोहवश नहीं करना चाहता, वे सर्व कर्मवश होकर तुम्हें करने की पड़ेंगे। यह नियम साधु महात्मा सन्यासी एवं साधारण जीव सभी पर सामान्य रूप से लागू है।

योगी सुंदरगिरी का हरिद्वार कुंभ में आगमन

योगीराज कृपालानंद के परमानुगृह से डाकू सुंदर सिंह के स्वरूप से बदल कर परिवर्तित होने वाले योगी सुंदरगिरी एक बार हरिद्वार कुंभ में आये। कई सौ की तादाद में उनकी शिष्या मंडली उनके साथ थी। इतने बड़े समुदाय के लिये अन्न क्षेत्र की बड़ी भारी आवश्यकता थी।

योगी सुंदरगिरी ने देखा कि इस कुंभ के मेले में कोई एक बड़े धनिक आये हुये हैं जिनसे इस अभाव की पूर्ति करानी चाहिये। योगी सुंदरगिरी सर्व समर्थ थे, चाहते तो उन सेठजी के मन में प्रेरणा करके भी उस काम को करा सकते थे। किन्तु उन्होंने वैसा न करके अपने एक शिष्य के द्वारा एक आज्ञापत्र लिख कर भेज दिया कि इतनी बोरी खांड, इतनी बोरी आटा, इतने कनस्तर घी के, इतना साग–सब्जी व अन्यान्य सामान तत्काल भेज दो। सेठ जी ने इतने बड़े सामान को भेजने में जब आना कानी की तो योगी सुंदरगिरी ने प्राणार्षिणी विद्या से उनके प्राणों को खींचना प्रारम्भ कर दिया और जो काम साधारण प्रेरणा मात्र से कराया जा सकता था उसको कठिन आकर्षण से जबरदस्ती कराया। इसी का नाम वृत्ति सारूप्य है।

सर्वसाधारण प्राणी वृत्ति सारूप्य में रहा करते हैं। केवल मात्र युक्त योगी जिसने अपने कठिन प्रयास से निर्जीव समाधि को प्राप्त कर लिया है। वह ही देह धारण करते हुये भी निर्जीव समाधि में स्वरूपा व स्थित होते हैं। जो लोग बिना परिश्रम के एवम् बिना तपश्चर्या के सिद्धानुगृह को पाकर उच्चतम स्थितियों को पा जाया करते हैं, वे वृत्ति सारूप्य को प्राप्त होकर अपने स्वभाव वश पाप पुण्य के झमेले खरीद लिया करते हैं। इसलिये जहाँ योगी अपने समाधि रूप चरम लक्ष्य को प्राप्त करता है। वहाँ अपने क्लिष्ट वृत्तियों के नाश करने के लिये तीव्रतम तपश्चर्या अथवा योगांगों के अनुष्ठानों की उसे भारी आवश्यकता रहती है। जिससे इस शरीर के अंदर रज–तम के क्षय हो जाने के बाद सतोमयी शुभ वृत्तियों का उदय हो जाये जिससे वृत्ति सारूप्य काल में उससे शुभ कार्य ही हो सके।

वैसे मनुष्य के जीवन में क्लिष्टाकृत वृत्तियों का उत्थान पतन प्रायः होता ही रहता है किन्तु उस व्यक्ति का पुरूषार्थ सफल है जिसने अपनी मनोवृत्तियों को क्लिष्टता से निकाल कर अपने आप को शुभ वृतीक बना लिया है। जिसकी वृत्ति बिना ही समाधि के दम्भाकार बनी रहती है एवं जिसकी बुद्धि स्थिर हो गयी है वह व्यक्ति देह धर्मों के अंदर रहता हुआ भी मुक्त आत्मा है और उसने आप को पतन से परे निकाल लिया एवम् कृतार्थ बना लिया है। वह हर कार्य करता हुआ भी कुछ नहीं करता एवम् सब प्रकार के कर्मबंधन से परे है। स्थित प्रज्ञ पुरुष के लक्षण गीता में भगवान श्री कृष्ण ने बहुत ही सुंदर शब्दों में लिखे हैं सर्व हितार्थ उनका यहाँ लिख देना बहुत ही समुचित मालूम देता है। अर्जुन ने श्री कृष्ण जी से स्थिति प्रज्ञ के लक्षण पूछे वे इस प्रकार हैं :–

स्थित प्रज्ञस्य का भाषा
समाधिस्थस्य केशव
स्थित धी : किं प्रभासेत
किमासीत व्रजेत किम्।।

अर्थ – हे प्रभो स्थित प्रज्ञ समाधिस्थ पुरुष के क्या लक्षण हैं। स्थित प्रज्ञ कैसे चलता है कैसे बैठता है जगदात्मा भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन के इस पवित्र प्रश्न को सुनकर उसका उत्तर इस प्रकार दिया, अर्थात् जिस समय मनुष्य अपनी मनोगत सर्वकामनाओं को छोड़ कर एवम् अपने

आत्म स्वरूप में स्थित रहता है तभी वह स्थित प्रज्ञ कहलाता है। दु:खों में जिसका मन दु:खी नहीं होता और सुखों की जिसे इच्छा नहीं होती जिसके मन में राग भय क्रोध निकल गये हैं वह मुनि स्थिति प्रज्ञ कहा गया है। जो व्यक्ति सर्वत्र, स्नेह रहित रहता है अच्छा या बुरे शुभ – अशुभ फल को पाकर न किसी प्रकार का दुख मानता है न खुश होता है। वह अवश्य स्थित प्रज्ञ है। जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को समेटकर अपने अंदर कर लिया करता है उसी प्रकार जिस व्यक्ति ने अपनी सारी इन्द्रियों को इन्द्रियार्थों से हटाकर अपने वश कर लिया है, उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित है जो व्यक्ति निराहार रहता है उसकी वासना नष्ट प्राय: हो जाती है किन्तु विषयों में क्या आनन्द होता है। इस रस की भावना पर दर्शन के बाद ही निवृत होतीं है।

विद्वान पुरुष इन्द्रिय जय का प्रयत्न करते हैं किन्तु उनके यत्न करने पर भी इन्द्रियों का बल इतना बड़ा है कि बलात् विद्वानों के मन को भी हर लेती है। इन्द्रियों को संयम में लाकर और चित्त को समाहित करके जो व्यक्ति मृतपरायण है और इन्द्रियाँ जिसके वश में हैं उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित है जो पुरुष विषयों का चिंतन करते हैं वह विषय संगी बन जाते हैं और विषय संग के मन में काम पैदा होता है और कामना के पूर्ण न होने से क्रोध बढ़ जाता है और क्रोध से मनुष्य, संमोह को प्राप्त होता है और संमोह रूप मूढ़ता से स्मृति भ्रंश और स्मृति भृंश से बुद्धि नाश और, बुद्धि के नाश हो जाने से अवश्य नष्ट हो जाता है।

सारी कामनाओं को छोड़कर जो पुरुष नि:स्पृह, ममता रहित एवं अहंकार रहित होकर विचरता है वही शान्ति को प्राप्त करता है।

हे अर्जुन यही पवित्रतम स्थिति है जिसको पाकर मनुष्य कभी भी मोह को प्राप्त नहीं होता और इसमें स्थित रहने वाला व्यक्ति अन्त में ब्रह्म निर्वाण मोक्ष को प्राप्त होता है।

❑ सम्पादकीय

यम-नियम का आराधन

योग-पथ का अनुसरण करने वाले साधकों को योग के जिन अष्टाङ्गों की साधना करनी पड़ती है उनमें सर्व-प्रथम आचरणीय होते हैं यम और नियम। योग दर्शन में इन्हें सार्वभौम महाव्रतों की संज्ञा दी गई है यानी इनके परिपालन करने या व्यवहार में लाने पर देश काल जाति वर्ण भेद आदि कुछ भी रुकावट नहीं डाल पाते। सर्वत्र सब काल में सभी इन्हें अपना सकते हैं। अपनी इसी विशेषता के कारण इन्हें सार्वभौम महाव्रतों के रूप में व्याख्यात किया गया है।

योग-दर्शन में महर्षि पतंजलि ने साधन-पाद के सूत्र सख्या 30 में यमों का परिचय इस रूप में दिया है :-

अहिन्सासत्यास्तेय्य ब्रह्मचर्या परिग्रहयमा:।

अर्थात्- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं। आगे इसी साधन पाद के 32 वें सूत्र में महर्षि ने नियमों का परिचय भी इस रूप में कराया है।

शौच सन्तोष तप : स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमा:।

यानी शौच (आभ्यान्तरीय और बाह्य) सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम हैं।

अष्टाङ्ग योग के यह प्रथम दो अङ्गयम-नियम ही, सारी योग-साधना के अधिष्ठान कहे जाते हैं। बिना इस अधिष्ठान अथवा आधार-भूमि के योग-साधना भवन के सफल निर्माण की कोई कल्पना ही नहीं की जा सकती। साधना भवन का आह्लादकारी प्रासाद, जहाँ पहुँचकर साधक को समाधि रूपी ध्येय की उपलब्धि होती है, इस आधार के बिना बनाने का प्रयास बालू के ढेर पर मकान बना लेने के निष्फल प्रयास जैसा ही रहता है।

इस वास्तविकता को योग-योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने भी अर्जुन को समझाते हुए कहा है :-

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्व कर्मणाम्।।
अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च प्रथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवात्र च पञ्चमम्।।

अर्थात्- हे अर्जुन ! सब कर्मो को पूर्ति में पाँच कारण रहते हैं इन्हें तू मुझसे सुन। सांख्य दर्शन के अनुसार इन्हें कर्म का अधिष्ठान, कर्त्ता, करण, चेष्टा और दैव कहा गया है।

भगवान के इस कथन में भी किसी कार्य की सम्पन्नता में अधिष्ठान का होना सबसे पहली आवश्यकता बताई गई है। योग पथारुढ़ होकर जो साधक समाधि के अविर्वचनीय

आनन्द की उपलब्धि करना चाहते हैं उन्हें यम–नियम रूपी महाव्रतों का पूर्णतया परिपालन अवश्य करना चाहिए। क्योंकि ये दोनों योग के आरम्भिक आधार होते हैं। बिना इस आधार के योग के शेष छैः अंगों में प्रवेश पाने का कोई अधिकारी नहीं बन सकता।

जिन साधकों की तीव्र लालसा योगी–जीवन व्यतीत करने की रहती है वे बिना किसी क्लेश और कठिनाई के सहजता से इन सभी व्रतों को अपनी दैनिक चर्या में सम्मिलित करके तदनुसार चलने का संकल्प ले लेते हैं। मानव जीवन रूपी सरिता जब यम और नियम रूपी दो किनारों के बीच में होकर बहने लगती है तब वह स्वच्छ, निर्मल और लोक–कल्याणकारिणी बन जाती है लेकिन यही सरित–प्रवाह जब अपने तटों का उल्लंघन करके बाहर उमड़कर बहने लगता है तब वह न केवल अपनी स्वच्छता और निर्मलता को खो बैठता है अपितु किनारों पर इधर–उधर बसे जन–समूहों के हितों का विनाशक भी बन जाता है। ठीक यही दशा हमारे जीवन रूपी सरित–प्रवाह की समझनी चाहिए। जब तक हमारा जीवन प्रवाह यम–नियम रूपी तटों के भीतर रहकर प्रवाहित होता रहेगा यह निश्चित रूप से स्वच्छ, निर्मल और स्वयं अपने तथा दूसरों के लिए कल्याणकारी बना रहेगा, प्रतिकूल इसके जब वह मर्यादा तोड़कर किनारों से बाहर बहने लगेगा तो सारी स्वच्छता और निर्मलता नष्ट करके अपना स्वरूप खो बैठेगा। यमों और नियमों में जिन दस गुणों को महाव्रतों के रूप में वरणीय बताया गया है वे साधारणतया मानव के सम्पूर्ण विकास के आवश्यक आधार हैं। लौकिक जीवन को सुख शान्ति और दुःख रहित बनाने में भी ये सब गुण ही सहायक बना करते हैं। यदि परम पुरुषार्थ मोक्ष के धरातल को छू पाने की ताकत साधक नहीं जुटा पाते ते सुख शान्ति और सम्वृद्धि के आंगन में तो निश्चित रूपेण यह यम–नियम रूपी व्रत उसे पहुँचा ही देते हैं। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, ईश्वर प्रणिधान तप आदि सभी ऐसे गुण या वृत हैं जिनमें से एक की भी आराधना कर लें तो शेष सभी गुण उस एक के अनुगामी बन जायेंगे।

'आराधना' का अर्थ इनकी स्तुति या पूजा मात्र करना नहीं है अपितु आराधना से हमारा अर्थ है इन्हें जीवन के प्रत्येक व्यवहार में अनुष्ठित करना। आराधना हम उसी पदार्थ या व्यक्ति की करते हैं जो हमारे लिए आराध्य, पूज्य और इष्टापूर्ति करने वाला होता है। केवल ध्यान रखने की बात यह है कि किसी भी व्रत या गुण का नामोच्चारण मात्र अथवा उसके बार–बार पाठ कर कण्ठाग्र कर लेने मात्र से कभी किसी का कल्याण नहीं हुआ करता। कल्याण केवल किसी गुण या व्रत को अपने आचरण में ले आने से ही हो पाता है। सभी को विदित है कि सत्य और अहिंसा मात्र दो व्रतों का आश्रय लेकर ही महात्मा गाँधी जैसे युगपुरुष ने देश की राजनीति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया था। सत्य और अहिंसा दोनों को वे दो अलग–अलग व्रत नहीं समझते थे। उनका मानना था कि सत्य को अपना लेने पर अहिंसा का भाव स्वतः उदय होकर उसका सहचारी बन जाता है। हमारे शास्त्रों की भी मान्यता है कि एक सद्‌गुण अन्य सद्‌गुणों को स्वयं खींचकर अपना अनुगामी बना लेता है। यम–नियमों में जिन दस सद्‌गुण अथवा व्रतों का उल्लेख है ये सभी विलक्षण आकर्षण शक्ति वाले हैं, सभी अनुष्ठेय हैं। इसीलिए

इनका परिपालन करना, इनके अनुसार जीवन व्यतीत करना, दैनिक व्यवहार में इन्हें ओत–प्रोत कर लेना योगी के लिए आवश्यक और अनिवार्य बताया गया है।

उपाय प्रत्यय वाले योगियों का उपाय क्रम तो यम–नियम की आराधना अथवा अनुष्ठान से ही आरम्भ होता है। श्रद्धा का संबल लेकर जो इन व्रतों के अनुष्ठान में लग जाता है, निस्सन्देह वह समाधि सिद्धि की आगामी भूमिकाओं में तत्परता से आगे बढ़ते जाने में शीघ्र सफलता प्राप्त कर लेता है। जैसाकि हमने ऊपर उल्लेख किया है ये सब ऐसे व्रत हैं, जिनमें देश, काल, वर्ण–व्रत आदि का कोई भेद बाधक नहीं बनता। यदि मानव समाज को समग्र रूप से उन्नत और विकसित करना है तो यम–नियम सम्बन्धी सूत्र में पिरोये गये यही वे अनमोल मोती हैं, जिन्हें धारण करके प्रत्येक राष्ट्र का प्रत्येक मानव अपने को सही अर्थ में– मानव कहलाने के अधिकार का वरण कर सकेगा। कौन नहीं जानता है कि आज सर्वत्र मानव समाज में जो भी अशान्ति, बेचैनी, व्यग्रता, पद और पद–प्रतिष्ठा की जो निन्दनीय आपाधापी और विनाशक, हिंसकवृत्ति पनप रही है उसका मात्र कारण यही है कि यम–नियम जैसे महाव्रतों को जीवन–क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने में हम सब उपेक्षा वृत्ति का ही आश्रय लेते रहे हैं। यह उपेक्षा वृत्ति ही हमारे राष्ट्र के पतन का कारण बनी हुई है। काश, हम इसका उन्मूलन कर सकें।

इस लेख में केवल महाव्रतों की कुछ चर्चा मात्र की गई है। आगामी अंकों में क्रमशः एक–एक व्रत की महत्ता और उसकी उपयोगिता का विवेचन करने का प्रयास करेंगे।

❑❑❑

प्रत्येक आत्मा अनन्त है। हमारे पैरों तले रेंगते रहने वाले क्षुद्र कीट से लेकर महत्तम और उच्चतम साधु तक में वह अनन्त शक्ति, अनन्त पवित्रता और सभी गुण अनन्त परिमाण में मौजूद हैं। भेद केवल अभिव्यक्ति की न्यूनाधिक मात्रा में है। कीट में उस महाशक्ति का थोड़ा ही विकास पाया जाता है, तुममें उससे अधिक और किसी दूसरे देवोपम पुरुष में तुमसे भी कुछ अधिक शक्ति का विकास हुआ है; भेद बस इतना ही है, परन्तु है सभी में वही एक शक्ति।

पतंजलि कहते हैं –'ततः क्षेत्रिकवत्' (4/3)। किसान जिस तरह अपने खेत में पानी भरता है। किसी जलाशय के वेग से खेत के बह जाने के भय से उसने नाली का मुँह बन्द कर रखा है। जब पानी की जरूरत पड़ती है, तब द्वार खोल देता है, पानी अपनी ही शक्ति से उसमें भर जाता है। पानी आने के वेग को बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं; क्योंकि वह जलाशय के जल में पहले से ही विद्यमान है। इसी तरह हममें से हर एक के पीछे अनन्त शक्ति, अनन्त पवित्रता, अनन्त सत्ता, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द का भण्डार परिपूर्ण है, केवल यह द्वार – यही देहरूपी द्वार हमारे वास्तविक रूप के पूर्ण विकास में बाधा पहुँचाता है।

– स्वामी विवेकानन्द

श्रीमद्भागवत में योग–परिचर्या

डॉ. विजय सिंह

अब तक के धारावाहिक " **श्रीमद्भागवत में योग–परिचर्या** " से यह विदित हो गया कि योग का विराट विस्तार तंत्र, मंत्र, भक्ति, युक्ति, ज्ञान, सिद्धियाँ और समाधि ही नहीं अपितु तात्विक रूप में ब्रह्म के साकार और निराकार का समाधान में हुआ है।

त्रिदेव, ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं उनकी शक्तियाँ सृष्टि के सृजन, पालन एवं संहार को क्रीड़ावत हर कल्पों में करते रहते हैं। मनु, सप्तर्षि, इन्द्र, देवता तथा ज्ञानी, सिद्ध योगी, मुनि, ऋषि इस क्रीड़ा को प्राणियों के हितार्थ सम्पादन करने में सहभागी बनते हैं।

वर्तमान युग में भौतिक विज्ञान जैसे आज सहज पठित लोगों को स्वीकार्य है, वे इसे विज्ञान की देन समझते हैं, उसी प्रकार हजारों–लाखों वर्षों पूर्व का योग–विज्ञान से चमत्कारिक स्थितियाँ आज हमें अविश्वसनीय लगती हैं क्योंकि हम यथार्थतः बहिर्मुख हैं, योग की वर्णाक्षरी मन की एकाग्रता से प्रारम्भ हो चित्त–वृत्तियों के सम्पूर्ण निरोध पर समाप्त होकर, आत्म–प्रतिष्ठा प्रदान करती है।

अतः नवम् स्कन्ध से लेकर बारहवें स्कन्ध में वर्णित योग महिमा एवं योगेश्वर महिमा से हम सभी क्रमशः परचित होंगे।

नवम् स्कन्ध के प्रथम अध्याय में मेरु पर्वत की तलहटी में एक दिव्य वन है जिसमें शंकर–पार्वती विहार करते हैं। एक बार कुछ ऋषिगण भगवान शंकर के दर्शनार्थ उस वन में गये। उस समय अम्बिका वस्त्र हीन थीं। ऋषियों को सहसा आया देख वे लज्जित हो गयीं। ऋषियों ने देखा कि भगवान् गौरी–शंकर इस समय विहार कर रहे हैं, इसलिये वे वहाँ से लौटकर भगवान नर–नारायण के आश्रम चले गये। भगवान शंकर ने अम्बिका को प्रसन्न करने के लिये कहा–

मेरे सिवा जो भी पुरुष इस स्थान में प्रवेश करेगा, वही स्त्री हो जायेगा।

आठवें स्कन्ध के अंतिम अध्यायों में राजर्षि सत्यव्रत भगवान मत्स्यावतार से ज्ञान प्राप्त कर इस कल्प में वैवस्वत मनु हुये।

वैवस्वत मनु सन्तान हीन थे। सर्वसमर्थ भगवान वसिष्ठ ने मित्रावरुण यज्ञ कराया। वैवस्वत मनु की धर्म पत्नि श्रद्धा ने होताओं को प्रसन्न कर याचना की कि मुझे कन्या ही प्राप्त हो। एकाग्रचित्त होताओं ने यज्ञ कुण्ड में आहुति डाली। अतः यज्ञ के फलस्वरूप पुत्र के जगह इला नाम की कन्या हुई। श्राद्धदेव (वैवस्वत मनु) विशेष प्रसन्न नहीं हुये। वृद्धप्रपितामह भगवान वसिष्ठ ने जान लिया कि यह होताओं के विपरीत संकल्प के कारण हुआ है। मैं अपने तप के प्रभाव से उसे (इला) श्रेष्ठ पुत्र में परिवर्तित कर दूँगा। उनके प्रभाव से वह कन्या इला सुद्युम्न

नामक श्रेष्ठ पुत्र में बदल गयी।

एक बार वीर सुद्युम्न घोड़े पर सवार शिकार खेलते हुये मेरु पर्वत के तलहटी में स्थित उस वन में प्रवेश किये जिसमें भगवान शंकर–पार्वती विहार किया करते हैं। देखते–देखते सुद्युम्न स्त्री हो गया उसका घोड़ा घोड़ी में परिवर्तित हो गया। उनके अनुचर सभी स्त्री हो गये। सभी इस परिवर्तन से आश्चर्य चकित, चित्त उदास, भयभीत थे।

सकुमारो वनं मेरोरधस्तात् प्रविवेश ह।

यत्रास्ते भगवाञ्द्र्वो रममाणः सहोभया।।25।।

तस्मिन प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्न पर वीरहा।

अपश्यत् स्त्रियभात्मानमश्वं च वडवां नृप।।26।। अ.1, स्क 9

अब सुद्युम्न स्त्री हो गये थे। उस बन से दूसरे बन में विचरने लगे। उस समय शक्ति शाली बुध ने देखा मेरे आश्रम के पास एक सुन्दरी बहुत सी स्त्रियों से घिरी विचरण कर रही है। बुध के प्रस्ताव से सहमति जताते हुये सुन्दरी ने बुध को अपना पति बना लिया। बुध ने उस सुन्दरी से पुरूखा नाम का पुत्र उत्पन्न किया।

कालान्तर में सुद्युम्न को भगवान वसिष्ठ का चिन्तन हुआ। वे सुद्यम्न की दशा देख द्रवित हुये और भगवान शंकर की आराधना की। भगवान शंकर जी वसिष्ठ जी पर प्रसन्न हुये और बोले– वसिष्ठ ! तुम्हारा यह शिष्य एक महीने तक पुरुष और एक महीनें तक स्त्री रहेगा। इस व्यवस्था से सुद्युम्न राज्य का पालन करे। वृद्धावस्था में अपने पुत्र पुरूखा को राज्य देकर स्वयं तप करने हेतु वानप्रस्थ होकर वन में निवास किये।

वैवस्वत मनु ने भगवान की आराधना किया और अपने समान दस पुत्र प्राप्त किये। जिसमें सबसे बड़े इक्ष्वाकु थे।

मनु पुत्रों में एक का नाम पृषध्र था। गुरु वसिष्ठ ने उसे गायों की रक्षा में नियुक्त कर रखा था। संस्कार वसात उससे एक गाय का बध अनजाने में हो गया। वर्षा की अंधेरी रात में बाघ गोसाले में प्रवेश कर एक गाय को दबोच लिया। गाय की पीड़ा युक्त आवाज सुन अंधेरे में पृषध्र तलवार का वार किया जिससे गाय का गर्दन कट गया साथ ही व्याध्र को भी चोट लगी वह अँधेरे में जगल की ओर भाग गया।

सूर्योदय काल में जब वसिष्ठ जी ने गौ को मरा देखा तो कुपित होकर शाप दिया– तुम इस कारण अब नहीं रहोगे, जाओ शूद्र हो जाओ। पृषध्र गुरुदेव को दूर से विनय पूर्वक प्रणाम कर बन में प्रवेश किया और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण कर भगवान के स्मरण में लग गया। वृत्तियाँ शाँत हो गयीं। वह आत्म–ज्ञान से संतुष्ट अपने चित्त को परमात्मा में स्थित करके समाधिस्थ रहता।

आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः।

विचचार महीमेतां जडान्चबधिराकृतिः।।13।।

मनु महाराज का छोटा पुत्र कवि राज्य छोड़ कर बन्धुओं के साथ बन में चला गया एवं अल्प

समय में किशोरावस्था में ही परमात्मा को प्रकाश स्वरूप हृदय में विराजमान कर परम पद प्राप्त कर लिया।

मनु के अन्य पुत्रों की वंशावली का विवरण दिया गया है। इन्हीं वंशों में मरुत्त के पुत्र का नाम दम था। इनके वंश में आगे चलकर राजा बन्धु से तृणविन्दु का जन्म हुआ। इन्हें अप्सराओं में श्रेष्ठ अलम्बुषा ने वरण किया। जिससे कई पुत्र एक कन्या इडविडा पैदा हुई। इडविडा के गर्भ से मुनिवर विश्रवाने, जिनके पिता योगेश्वर पुलस्त्य जी हैं लोक पाल कुबेर को उत्पन्न किया–

तस्यामुत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतम्।
प्रादाय विद्यां परमामृषि र्योगश्वरात् पितु:।। 32।। अ.2, स्क.9

महाराज तृणबिन्दु के पुत्र विशाल ने वैसाली नगरी बसायी। इस वंश परम्परा में कृशाश्व के पुत्र सोमदत्त हुये हैं। जिन्होंने अश्वमेघ यज्ञों द्वारा भगवान की आराधना किया तथा योगेश्वरों का आश्रय लेकर उत्तम गति प्राप्त किया–

कृशाश्वात् सोमदत्तोऽभूद् योऽश्वमेधैरिडस्पतिम्।
इष्ट्वा पुरुषमापाग्र्यां गतिं योगेश्वराश्रिता:।। 35।।

उपरोक्त श्लोक से स्पष्ट है कि यज्ञादि से अर्जित पुण्य और पुण्य से योगेश्वरों की कृपा प्राप्ति द्वारा ही सोमदत्त उत्तम लोकों को प्राप्त हुआ।

□□□

आवश्यक–सूचना

बड़े हर्ष के साथ सूचित करना है कि अपने योग साधन आश्रय रेलवे रोड, ऋषिकेश का वार्षिक योग महोत्सव दिनांक 2, 3 व 4 जून 2017 को बड़े ही हर्ष और उल्लास के साथ मनाया जाना सुनिश्चित हो चुका है। अत: गुरु भाईयों–बहनों से निवेदन है कि उक्त तिथियों में आश्रम पहुँच कर सत्संग का लाभ लें।

निवेदक
मंत्री
योग साधन आश्रम (ट्रस्ट)
रेलवे रोड, ऋषिकेश

लल्ला, अब कभी शेर मिलेगा नहीं

जगदीश राए बंसल

दोहा –

लेखक नहीं लेख लिखूं, बपूरा मैं अनजान।
दाता कृपा बनी रहे, लिखता रहूं गुणगान।।

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन गुरु महाराज के लाड़ले पार्षद एवं अपने परम आदरणीय गुरुभाई श्री पुष्कर दत्त शर्मा जी से सभी आश्रमवासी परिचित होंगे। पूज्य गुरु भाई श्री शर्मा जी गाँव धनाना जिला सोनीपत हरियाणा के रहने वाले हैं। गाँव धनाना में अपने भाग्य विधाता गुरु देव जी महाराज अपनी पूज्य बुआ जी के घर जाते रहते थे। कभी–कभी महिना भर भी रह लेते थे। अतः आदरणीय श्री शर्मा जी लगभग 12 वर्ष की आयु से ही सर्व समर्थ जी के सम्पर्क में आ गए थे। अपनी उस अल्पायु से ही श्री शर्मा जी आज तक एकनिष्ठ गुरु सेवा में समर्पित हैं और वर्तमान में श्री गुरु जन्म भूमि अलुपुर धाम (पानीपत) में निष्काम भाव से सेवा कर रहे हैं। अलुपुर से रोहतक अपने सुपुत्र श्री ऋषि राम (अध्यापक) के पास आते–जाते कभी–कभी हम गोहाना (पहले हम गोहाना रहते थे) वालों को भी निहाल कर जाते थे।

एक बार आदरणीय श्री शर्मा जी, जिनको हम प्यार से दादा पोहकर के नाम से भी पुकार लेते हैं, जब गोहाना पधारे तो अपेक्षाकृत अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में थे। वैसे तो दादा जी का शरीर वृद्ध हो चला है। मगर इस बार का उत्साह देखते ही बनता था। मैंने एक कहावत सुनी थी कि :

खैर, खून, खांसी, खुशी बैर प्रीती मदपान।
रहिमन दाबे ना दबै, जानत सकल जहान।।

इसलिए वार्तालाप के आदान–प्रदान से शीघ्र ही पता चल गया कि श्री शर्मा जी अपने प्रिय पौत्र जी की कल होने वाली सगाई (शादी का प्रथम चरण) के उपलक्ष्य में रोहतक जा रहे हैं जो सर्वसमर्थ की कृपा से ही एक सम्पन्न परिवार से सम्बन्ध बना है।

हम सभी जानते हैं कि अपने पूज्य दादा जी पर अनाथ नाथ की अनन्त कृपाएँ हैं, जो समय–समय पर सिद्धयोग पत्रिका एवं परम आदरणीय श्री दासलाल जी महाराज द्वारा प्रकाशित गुरु ग्रन्थों में पढ़ने को मिलती रहती हैं। इसी प्रकार का एक संस्मरण इस बार दादा पोहकर से सुनने का सौभाग्य इस अधम को मिला। मेरी योग्यता का अभाव देखते हुए एवं श्री गुरुदेव भगवान के इस तोतले शिष्य को अपना अनुज जान कर त्रुटियों के लिए क्षमा करेंगे।

यह कृपा प्रसंग आज से लगभग 45 वर्ष पहले का है। एक बार आदरणीय दादा पोहकर मल शर्मा जी अपने परम आदरणीय गुरु भाई श्री कृष्णानन्द जी से मिलने एवं आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने हेतु अपने सालवन आश्रम में गए। सायंकाल का समय था। उस समय श्री कृष्णानन्द जी रसोई घर में भोजन बनाने की व्यवस्था कर रहे थे। श्री शर्मा जी ने दूर से ही यह सब देख लिया था। अतः अपने जूते वहीं उतार कर रसोई घर में प्रवेश कर महाराज श्री कृष्णानन्द जी का उचित अभिवादन किया। श्री शर्मा जी द्वारा अभिवादन से पूर्व ही महात्मा जी जोर से बोले, कौन हो तुम? रसोई घर में ऐसे ही चले आए? हमारा भोजन अपवित्र कर दिया। किस जाति के हो तुम..........? इस प्रकार कहते–कहते भोजन का सारा सामान एवं लकड़ियाँ आदि रसोई से बाहर फेंक दिया। हाथ पैर भी धो कर नहीं आए।

श्री पुष्कर जी ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि भाई जी मैं ब्राह्मण हूँ, आपका अनुज हूँ.. मगर पूज्यवर जी तो नाराज ही बोलते रहे और अपने ध्यान कक्ष में जाकर ध्यान में बैठ गए। दादा पुष्कर जी संकट में पड़ गए कि अब क्या किया जाए? मेरे द्वारा भाई जी को कोई कष्ट नहीं होना चाहिए। इस प्रकार विचार कर श्री शर्मा जी ने स्नान किया। सारा सामान जुटा कर भोजन प्रसाद बनाया। तत्पश्चात् श्री प्रभु जी को भोग लगाया। फिर कमरे के बाहर बैठ गए और मन्त्र जाप करने लगे। मगर मन में ये भाव चल रहे थे–

आया था कुछ पाने को, खो दिया सन्मान।
क्या करू ना करूं, गुरुवर करो निदान।

तथा

बिगड़ी बनाने वाले, बिगड़ी बना दे।
रूठ गए भैया मेरे, तुरन्त मना दे।।

महात्मा कृष्णानन्द की ध्यान अवस्था बहुत ऊँची थी। रोशनी की सफेद–सफेद किरणें, कमरे से बाहर आती हुई श्री शर्मा जी खुली आँखों से देख रहे थे। अन्ततः इन्तजार की घड़ियाँ समाप्त हुई और महात्मा जी कमरे से बाहर आए। उनको देखते ही श्री पुष्कर जी ने कर बन्दा, प्रार्थना की कि भाई जी मैंने स्नान कर रसोई में भोजन प्रसाद बनाया है और श्री प्रभु जी को भोग लगा दिया है। अब आप भी भोजन करने की कृपा करें। महात्मा जी ने दबी जबान से कहा कि जब भोग ही लगा दिया है तो प्रसाद पाना ही पड़ेगा। परिणामतः दोनों ने भोजन प्रसाद ग्रहण किया। रात्रि को दादा जी ने महात्मा जी से कुछ आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त किया और महात्मा जी ने अपने द्वारा कहे अपशब्दों के लिए पश्चाताप किया।

अगले दिन प्रातः ही श्री शर्मा जी अपने किसी निजी कार्य से कहीं चले गए थे। फिर सायं काल आश्रम में लौट आए। इस समय महात्मा जी का ध्यान में बैठने का समय हो चुका था। अतः महात्मा जी अपने कक्ष में जाकर ध्यान में बैठ गए। दादा पुष्कर जी भी अपने कल वाले स्थान पर बैठ कर मन्त्र जाप करने लगे। कुछ समय पश्चात् ही कल की तरह सफेद–सफेद

प्रकाश कमरे से बाहर आता दिखाई दिया। पश्चात् अपनी आँखें बन्द कर गुरु मन्त्र करना प्रारम्भ कर दिया। उर्दू के एक शायर ने लिखा है कि –

होता वही है जो खुदा मंजूरे होता है।

मन्त्र जाप प्रारम्भ करने के थोड़ी देर पश्चात् ही श्री शर्मा जी को फावड़ा एवं खेंची (कृषि सम्बन्धी औजार) पटकने जैसी आवाज सुनाई दी। श्री शर्मा जी इस आवाज को अनसुना सा कर मन्त्र जाप में लगे रहे। शीघ्र ही दूसरी बार वही आवाज सुनाई दी। फिर तीसरी बार और अब चौथी बार वही आवाज और निकट से सुनाई दी। श्री शर्मा जी ने आँखें खोल कर देखा कि यह सब क्या हो रहा है? श्री शर्मा जी के होश उड़ गए, भय के कारण शरीर काँपने लगा कि चाहकर भी आवाज नहीं निकली, पसीना बहने लगा, आसन पसीने से पूरा भीग गया। कारण कि समीप ही एक बड़ा सा शेर मुँह फाड़े खाने को तैयार खड़ा है। मौत का खौफ देख कर गुरु जी की याद आना स्वाभाविक ही है। कहने लगे कि–

गुरु जी मेरे प्राण बचा दे।
मेरी मौत को दूर भगा दे।।
कितनों को तूने जीवन दान दिया है।
घनेरों को तूने अभय किया है।।
खड़े शेर को दूर भगा दे।
गुरु जी मेरे प्राण बचा दे।।

इस प्रकार श्री शर्मा जी ने मन ही मन में जगत नियन्ता अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक प्राण दाता योग योगेश्वर गुरु महाराज से आर्त प्रार्थना की कि मौत से मेरी रक्षा की जाय एवं इस प्राण लेवा शेर को यहाँ से भगा दें।

उस परम पिता जगदीश्वर को, जो श्रद्धा सहित पुकारेगा।
उस सेवक का कष्ट हरण, वो दौड़ा दौड़ा आएगा।

भगवान तो भक्त के वश में होते हैं। जैसे द्रोपती ने चीर हरण के समय पुकारा था उसी प्रकार श्री शर्मा जी ने आर्त पुकार की। चमत्कार! महान चमत्कार!! जैसे ही श्री शर्मा जी की मौन पुकार समाप्त हुई वह शेर वहाँ पर दिखाई नहीं दिया।

(क्रमशः)

□□□

पत्रं-पुष्पं-फलं-तोयम्

आयु कर्म च वित्तश्च विद्यानिधनमेव च।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिना:।।

उम्र, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु ये पाँच बातें जीव के गर्भ में ही लिख दी जाती हैं।

एकोऽपि गुणवान पुत्रो निर्गुणैश्च ज्ञतैर्वरम।
एकश्चन्द्र : तमो हन्ति न च तारा: सहस्त्रश:।।

एक ही गुणी पुत्र सैकड़ों गुण रहित पुत्रों से अच्छा है। जैसे अकेला ही चन्द्रमा अन्धकार का नाश कर देता है जिसे सहस्रों तारे भी दूर नहीं कर सकते।

कुग्रामवास: कुलहीनसेवा कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या।
पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या विनाग्नि: य न प्रदहन्ति कायम्।।

दूर ग्राम में रहना, नीच कुल की सेवा, खराब भोजन, क्रोधमुखी स्त्री, मूर्ख पुत्र, विधवा नारी ये छ: आग के बिना ही देह को जला देते हैं।

संसारतापदग्धानां त्रयो विश्रान्तिहेतव:।
अपत्यं च कलत्रं च संतां संगतिरेव च।।

संसार के दु:ख से दुखित पुरुषों को तीन ही विश्राम के कारण हैं, सन्तान, स्त्री और साधु-संगति।

अपुत्रस्यगृहं शून्यं दिश: शून्यास्त्वबान्धा:।
मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्यं दरिद्रता।।

बिना पुत्र के घर सूना है, बिना बन्धुओं के दिशायें शून्य हैं मूर्ख का हृदय शून्य है और निर्धन का सब सूना है।

क: काल: कानि मित्राणि क: देश: क: व्ययागमो।
कस्याह काचमेशक्तिरितिचिन्त्यं मुहुर्मुहु:।।

मेरा यह समय कैसा है, मेरा मित्र कौन है, मेरा देश कौन-सा है, मेरा आय-व्यय क्या है, मैं क्या हूँ और मुझ में क्या शक्ति है यह बार-बार सोचना चाहिए ?

अग्निर्देवो द्विजातीनां मनीषिणाँ हृदि दैवतम्।
प्रतिमा त्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनाम्।।

द्विजातियों का देवता अग्नि है, मनुष्य के देवता हृदय में रहते हैं, अल्प बुद्धि वालों का देवता मूर्ति हैं, और समदर्शियों के लिए सभी स्थानों में देवता हैं।

यथा चतुर्भि: कनक परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदन तापताडनै:।
तथा चतुर्भि पुरुष: परीक्ष्यते त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा।।

जैसे घिसना, काटना, तपाना, पीटना इन चार तरीकों से सोने की परीक्षा की जाती हैं वैसे ही त्याग, शील, गुण और आचार इन चार रीतियों से पुरुष की परीक्षा की जाती हैं।

यावद्भयेन भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतंतु भयं वाक्ष्य प्रहर्तव्यमशङ्कयी।।

तभी तक भय से डरना चाहिए जब तक भय तुम्हारे पास न आया हो, आए भय को देख निडर होकर सामना करना चाहिए।

अभ्यासाद्धार्यते विद्या कुल शीलेन धार्यते।
गुणन ज्ञायते त्वार्य: कोपो नेत्रेण गम्यते।।

अभ्यास से विद्या का, सुशीलता से वंश का, गुण से भले मनुष्य का और आँखों से क्रोध का पता लगता है।

नास्ति कामसमो व्याधि: नास्ति मोहसमो रिपु:।
नास्ति कोपसमो बह्निनास्ति ज्ञानात्परं सुखम्।।

काम के समान और कोई रोग नहीं है, अज्ञान के समान और कोई दुश्मन नहीं है, क्रोध के समान कोई आग नहीं है, ज्ञान से बढ़कर और कोई सुख नहीं है।

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रंमृतस्य च।।

विदेश में विद्या मित्र है, गृह में स्त्री मित्र है, औषधि रोगियों का मित्र है और धर्म मरे हुए का मित्र है।

❑❑❑

आचार्य जी का आगामी कार्यक्रम

श्री सिद्धगुफा संवाई, आगरा के आचार्य डॉ. दासलाल योगी का आगामी कार्यक्रम 6 जून से 9 जून 2017 योग सिद्ध आश्रम पुरानी मण्डी, जिला मण्डी (हिमाचल प्रदेश) में रहेगा। सभी इच्छुक साधक सम्मिलित होकर लाभ लें। इस कार्यक्रम में योग चिकित्सक डॉ. वीरेन्द्र स्वरूप सहित अनेक विद्वान आचार्यो के सम्मिलित होने की सम्भावना है।

योग विद्या और गुरु तत्व

दिनेश चन्द शर्मा – 9412671314

योग विद्या पराविद्या मानी गयी है। हमारे अनेक ग्रन्थों, उपनिषदों, और गीता में योग की महिमा बताई गई है। शिव संहिता में कहा गया है कि योगशास्त्र सब शास्त्रों में श्रेष्ठ है। योग शास्त्र के सम्यक् ज्ञान के अनन्तर कुछ जानने योग्य नहीं रह जाता है –

आलोक्य सर्व शास्त्राणि, विचार्य च पुनः पुनः
इदमेकं सुनिष्पन्नं योगशास्त्रं परं मतम्
यस्मिन ज्ञाते सर्वमिदं भवति निश्चितम्
तस्मिन् परिश्रमः कार्यः किमन्यच्छास्त्रभाषितम्। (शिव संहिता)

भगवान श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को योगी बनने के लिए उपदेश दिया है –

तपस्विभ्योऽधिकोः योगी
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी
तस्माद् योगी भवार्जुन (गीता अध्याय 6, श्लोक46)

योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, शास्त्र ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ माना गया है और सकाम कर्म करने वालों में भी योगी श्रेष्ठ है। इसलिए हे अर्जुन तू योगी हो।

इसी संदर्भ में गीता में आठवें अध्याय के श्लोक28 में कहा है–

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्य फलं प्रदिष्टम्
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परम स्थानमुपैति चाद्यम

योगी पुरुष इस रहस्य को तत्व से जानकर वेदों के पढ़ने में, यज्ञ, तप और दान आदि के करने में जो पुण्यफल कहा गया है, उन सबको निःसन्देह उल्लंघन कर जाता है और सनातन परमपद को प्राप्त होता है।

योग को ऋषियों ने दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों तापों की औषधि बताया है– भवतोपन तप्तानां योगो हि परमौषधम्। गुरुदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का कहना है कि योग ही दिव्य और अविनाशी जीवन है और जीवन जीने की कला है।

योग विद्या की महानता और उपादेयता तभी प्रमाणित होती है और इससे प्राप्तव्य लक्ष्य की प्राप्ति भी तभी सम्भव है, जब अधिकारी गुरु द्वारा उसे आत्मसात् किया जाए। यही कारण है कि गुरुतत्व का निरूपण सभी धाराओं में विस्तार से हुआ है। शास्त्रों में कहा गया है कि सद्गुरु सत्ता में सभी देवी देवताओं का समावेश होता है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरु र्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरु साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः
अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तमेन चराचराम्
तत्पदम दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।

शास्त्रों में गुरु और पर ब्रह्म परमात्मा में अभेद बताया गया है। क्योंकि ब्रह्म का जानकार ब्रह्म स्वरूप ही होता है। उसका साक्षात्कार हो जाने पर व्यक्ति तीनों तापों वाले सांसारिक बन्धन से मुक्त हो जाता है। शीघ्र ही सार्वकालिक परा शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

कबीर दास जी ने गुरुतत्व के बारे में कहा है–

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाय।
वलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय।।
कबीर ते नर अन्ध हैं, गुरु को कहते और
हरि रूठे गुरु ठौर हैं, गुरु रूठे नही ठौर।।

इसलिए गुरु में भगवद् बुद्धि होनी आवश्यक है और यह पूर्ण समर्पण भाव से ही सम्भव है–

शिष्य तो ऐसा चाहिए, जो गुरु को सब कुछ देय।
गुरु भी ऐसा चाहिए, जो कौडी हू ना लेय।।

गुरुगीता में गुरु तत्व की महत्ता बताई गयी है। गुरुतत्व बड़ा ही विचित्र और रहस्यमय है। गुरुतत्व की कृपा से लोक और परलोक दोनों ही प्राप्त हो सकते हैं। योग की सहजावस्था भी गुरु कृपा साध्य है–

दुर्लभो विषयत्यागों दुर्लभं तत्व दर्शनम्।
दुर्लभो सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना।।

सिद्धयोग परम्परा में गुरुकृपा से शक्ति पात द्वारा शिष्य का कल्याण होता है। कृपा साध्य है। शिष्य के साधन और अधिकार के अनुसार गुरुकृपा की उपलब्धि होती है। ज्ञान की प्राप्ति बहुत कुछ शिष्य की प्रज्ञा पर निर्भर है– शिष्य प्रज्ञैव बोधस्य कारणं गुरु वाक्यतः।

गुरुतत्व और भगवत् तत्व एक ही तत्व के दो रूप हैं। भगवत तत्व जगत नियन्ता है और कर्मो के अनुसार ही जीव को भोग प्रदान करता है, परन्तु गुरुतत्व असीम दया और करुणा का सागर है। उसकी कृपा अहैतुकी है। इसलिए उसकी शक्ति भी अचिन्त्य है – " **कर्तुम् अकुर्तुन्यथा कर्तु समर्थ** " है गुरुदेव की आरती के समय योग साधन आश्रमों में स्तुति में गाते हैं–

करता करै न कर सके, सद्गुरु करे सो होई

पिता से माता सौ गुना करती सुत सौं प्यार,
माता से हरि सौ गुना, हरि से गुरु सौ बार।।

योग विद्या के गुह्य ज्ञान की प्राप्ति में सद्गुरु अन्वेषण और उसकी शरणागति आवश्यक है। कहा जाता है कि जन्म जन्मान्तर के संस्कारों से गुरु की प्राप्ति होती है। पहले तो सद्गुरु की प्राप्ति ही कठिन है, फिर यदि प्राप्ति हो भी जाय तो गुरु में पूर्ण श्रद्धा भाव कठिन है और यदि श्रद्धाभाव भी उत्पन्न हो जाये तो गुरुकृपा कठिन है। विद्या गुरु और दीक्षा गुरु तो बहुत मिल सकते हैं परन्तु सद्गुरु पुण्यकर्मों से ही मिल पाते हैं। "**विवेक चूड़ामणि**" में सद्गुरु का लक्षण बताया है–

श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्म वित्तमः।
ब्रह्मण्युपरतः शान्तो निरिन्धन इवानलः
अहैतुक दया सिन्धुर्वन्धुरानतां सताम।

अर्थात् गुरु श्रोत्रिय, निष्पाप, कामना रहित, ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए। जो ईधन रहित अग्नि के समान शान्त हो, अकारण दया सिन्धु हो तथा शरणागत बन्धु हो।

सद्गुरु के बिना जीव का कल्याण नहीं है। " गुरु बिन ज्ञान न होई कोटि जतन कीजे "। परमतत्व और गुरुतत्व मे कोई भेद नहीं है। गुरु भगवत स्वरूप ही है। उसके दर्शन, स्पर्श, अथवा पान शब्द मात्र से ही तत्वज्ञान हो सकता है। विश्वामित्र जी महाराज ने कहा है–

दर्शनात् स्पर्शनात्, शब्दात् शिष्य देहके
जनयेद यः समावेशं शाम्भवं स हि देशिकः।।

गुरु तत्व की सम्पूर्ण शक्ति गुरुमंत्र में निहित है। गुरु प्रदत्त बीज मंत्र शिष्य के हृदय में अनन्त प्रकाश प्रज्वलित कर देता है। परन्तु यह शिष्य की योग्यता पर निर्भर है। गुरु प्रदत्त मंत्र अलौकिक शक्ति से परिपूर्ण होता है जिससे विशुद्ध प्रणव रूपा ध्वनि निर्गत होती है जो अधिकारी को चैतन्य स्वरूप मे प्रतिष्ठित कर देती है। गुरु मंत्र का उद्देश्य है मानव मन को अन्तर्मुखी कर देना और उसे चिद्रूप शुद्ध शब्द की उपलब्धि कराना। यों तो ब्रह्म तत्व सर्वत्र व्याप्त है। परन्तु उसके साक्षात्कार के लिए गुरु मंत्र अपेक्षित है।

सद् गुरु शिष्य को जिस मंत्र की दीक्षा देता है, उस मंत्र का जप, योग विद्या की उपलब्धि तथा लक्ष्य की प्राप्ति में परम सहायक होता है। प्रारम्भ में मंत्र जप में चित्त की वह एकाग्रता नहीं होती जो वास्तव में उसके लिए अपेक्षित है। किन्तु उससे जपकर्ता को हताश या उद्विग्न नहीं होना चाहिए क्योंकि एकाग्रता अभ्यास जन्य है। धीरे–धीरे ही एकाग्रता होती है। विचार के साथ अभ्यास करते–करते एकाग्रता होने लगती है। परन्तु गुरुमंत्र का जप किसी भी रूप में किया जाए, उसका फल अवश्य होता है। यहाँ तक कि बिना अर्थ समझते हुए भी मंत्र जप फलदायक होता है। जल, अग्नि, वायु का जिस प्रकार स्वाभाविक प्रभाव शरीर पर पड़ता है, उसी प्रकार मंत्रशक्ति का प्रभाव भी स्वाभाविक है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में लिखा है–

कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा,

सावर मंत्र जाल जिन्ह सिरिजा

अनामिल आखर अरथ न जापू

प्रगट प्रभाऊ महेश प्रतापू।

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि जी के विषय में तो कहा जाता है कि उल्टा मंत्र जपने से भी उनका कल्याण हो गया था– जान आदि कवि नाम प्रतापू, भयऊ सुद्ध करि उल्टा जापू। केन्द्रित होने पर ही बिखरी हुई विद्युत शक्ति उपयोग में आती है।

वर्तमान में विज्ञान ने ऐसे अनेक यंत्रों का आविष्कार किया है जिनसे विद्युत तरंगों (इलेक्ट्रो मैगनेटिक वेब्स) का प्रक्षेपण और आक्षेपण होता है। रेडियो, टी.वी., मोबाइल फोन आदि विद्युत शक्ति के द्वारा ध्वनि का प्रक्षेपण और संग्रहण करते हैं। मंत्र शक्ति तो उस विद्युत शक्ति से बहुत बढ़कर है। ऋषियों ने मंत्र शक्ति का साक्षात्कार किया था– **ऋषयो मंत्र द्रष्टारः।**

सद्‌गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज व्याख्यानों में प्रायः कहते थे खूब स्वाध्याय करो। प्रातः दो घण्टे गुरुमंत्र का जाप व ध्यान अवश्य करें। निरन्तर प्रातः 5 से 7 बजे ध्यान में बैठो। ऐसा करने से सर्वशक्तिमान श्री प्रभु जी कृपा अवश्य करेंगे। दीक्षाकाल में श्वास प्रश्वास से मंत्र जपने का उपदेश दिया था परन्तु निद्रा आ जाती है। इसलिए प्रारम्भ में गुरु मंत्र को जीभ से बोलकर जपो परन्तु आवाज होंठों से बाहर न आये। इसे उपान्शु जप भी कहते हैं। इस लिए चलते फिरते, उठते बैठते हर समय मन को जप में लगाने का प्रयास करना चाहिए।

गुरुगीता में कहा है–

गुरुमंत्रों मुखे यस्य तस्य सिद्धयन्ति नान्यथा

शुचि कर्माणि सर्वाणि दीक्षा व्रत तपांसि च

गुरुमंत्र जिसके मुख में है उसकी दीक्षा, व्रत, तप आदि सब शुभ कर्म सिद्ध होते हैं।

❑❑❑

स्थिरता निर्विकल्प समाधी है तथा एकाग्रता सविकल्प समाधी है। सविकल्प का तात्पर्य है कि उस अवधि में आवश्यक विचारों का मनःक्षेत्र में अपना काम करते रहना। मन की स्थिरता सर्वथा भिन्न बात है। उसे एकाग्रता से मिलती जुलती स्थिति तो कहा जा सकता है, किन्तु दोनों का सीधा सम्बन्ध नहीं है। जिसका मन स्थिर हो उसे एकाग्रता का लाभ मिल सके अथवा जिसे एकाग्रता सिद्ध है उसे स्थिरता प्राप्त हो जाये, यह आवश्यक नहीं।

छात्र जीवन में योग की आवश्यकता

अनिल दुबे, दतिया, म.प्र.

मनुष्य की समस्त उपलब्धियों में सबसे बड़ी उपलब्धि शिक्षा है वह शिक्षा जो हमारी प्राचीन समय में प्रचलित थी। शिक्षा का अर्थ समस्त प्रकार से सक्षम बनाना। शिक्षा सदगुणों की खान है आदमी को आदमी बनाने का यह सही माध्यम है।

शिक्षा से अच्छे नागरिकों का निर्माण होता है और अच्छे नागरिकों से समाज एवं देश मजबूत होता है। शिक्षा के क्षेत्र में आज हम इतनी उन्नति कर युके हैं अनेक नये प्रयोगों के द्वारा नई–नई बातों का ज्ञान प्राप्त करते जाते हैं परन्तु पीछे मुड़कर हमें उस शिक्षा को देखने का ध्यान नहीं रहता जो हमारे प्राचीन काल में प्रचलित थी। शिक्षा में भले ही आशा से ऊपर प्रगति की है लेकिन वर्तमान मे नैतिकता, सदाचार, आध्यात्मिक भाई चारा में दिन प्रतिदिन कमी हो रही है। शिक्षा चरित्र निर्माण नहीं कर रही है। शिक्षा के नाम पर विद्यालयों में कुछ विषयों के अध्यापन द्वारा बालक ही कुछ बौद्धिक शक्ति तर्क निर्णय विचार आदि का प्रशिक्षण जरूर होता है परन्तु शिक्षा के सही अर्थ सा विद्या या विमुक्तये आदि की उपलब्धि नहीं हो पायी। स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार बालक के शरीर, मन व आत्मा में अन्तर्निहित शक्ति के विकास से है।

विभिन्न राज्यों की सरकार द्वारा शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये विभिन्न योजनायें एवं कानून बनाये जा रहे हैं कि नि:शुल्क शिक्षा दी जायेगी शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने से या सभी की अनिवार्य शिक्षा से क्या देश को आगे ले जाया जा सकता है या समाज में सुधार किया जा सकता है। आज भी अधिकांश अनपढ़ लोग ऐसे हैं कि जो शिक्षा प्राप्त हैं उनसे कहीं अधिक उनके अन्दर मानवता, ईमानदारी, परोपकार है।

आज सभी शिक्षाविद यह कहते नहीं थकते कि आज शिक्षा जीवन से कट गयी है। शिक्षा न तो बालक को स्वस्थ बना पा रही है और न ही जीवन को जीने की कला सिखाती है और न ही अनुशासन में रहना सिखाती है न ही व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास में सहायक हो रही है।

आज देखने में आता है कि शिक्षित व्यक्ति के अन्दर संस्कार हीनता, वाणी में कठोरता, स्वार्थ, अनैतिकता अधिक देखने को मिलती है इस प्रकार की शिक्षा देने एवं लेने से क्या फायदा जब तक शिक्षा के साथ–साथ व्यक्ति के अन्दर संस्कार का अभाव होगा शिक्षा देने का कोई महत्व नहीं है। सभी तरह की तकनीकी और गैर तकनीकी शिक्षा का व्यापार जोरों पर है। शिक्षा बाजार में बिक रही है परिणाम यह कि जीवन का कोई मूल्य न ही रहें लेकिन ज्यादा से ज्यादा अर्थोपार्जन जुटाओं जिससे शान्ति और शक्तियों के विकास में कमी ही होती जा रही है।

जब व्यक्ति का मन एवं जीवन दो जगह बँट जाता है तो वह व्यक्ति न तो अपना न ही समाज का कल्याण कर सकता है। जीवन की पूर्णता एवं समस्त समस्याओं का निराकरण यदि है, तो वह है योग विद्या। प्राचीन समय में योग की वैज्ञानिक पद्धतियाँ थीं जिनको आधार मानकर समस्त प्रकार की शिक्षा दी जाती थी गुरुकुल शिक्षा के क्षेत्र में जितने परिणामदायी सिद्ध हुये उतने आज वैभवशाली शिक्षा नहीं हो पा रहे हैं। जीवन से धीरे-धीरे यह शिक्षा लुप्त होती गयी तथा यम, नियम, सदाचार व्यक्ति से दूर होते गये।

कुछ योग प्रशिक्षण केन्द्रों पर योग शिक्षा (वह योग शिक्षा जिस शिक्षा से समस्त विद्या का ज्ञान हो जाया करता है) दी जाती है, परन्तु वहाँ भी ऐसे योग शिक्षक शिक्षा देते हैं जिनमें पूर्ण भ्रष्टाचार, अनैतिकता स्वार्थ एवं संस्कार हीनता विराजमान है। जिनके ऊपर राजनैतिक लोगों का पूर्ण आशीर्वाद रहता है योग केन्द्र भी धीरे-धीरे अर्थोपार्जन के साधन बनते जा रहे हैं।

शरीर में जो स्थान आत्मा का है वही स्थान शिक्षा में योग का है। योग से व्यक्ति का मन स्फटिक मणि के समान उज्जवल हो जाता है समस्त विद्याओं में श्रेष्ठतम योग विद्या है। शिक्षा के साथ-साथ जीवन में योग विद्या परम आवश्यक है योग ही सही अर्थों में व्यक्ति/बालक का सर्वागणीय विकास कर सकता है योग बहिर्मुखी वृत्तियों के प्रवाह को रोककर अन्तर्मुखी बनाने का कार्य करता है जिससे बालक के जीवन में घर परिवार में, समाज में,योग्यता के साथ-साथ कार्य कुशलता में वृद्धि होती है।

कार्यकुशलता से बालक में अपार आत्म विश्वास साहस तीव्र बुद्धि, समय पर सही निर्णय लेने की क्षमता सभी के प्रति प्रेम, परिश्रम की क्षमता, शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रहने की कला आ जाती है जीवन में क्लेशों की निवृत्ति भी योगाभ्यास के द्वारा हो जाया करती है। योग व्यक्ति को सुखी जीवन के साथ स्वस्थ जीवन प्रदान करता है। योग से बालक की चेतना में अद्‌भुत विकास होता है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जीवन तत्व साधन की नौ क्रियाओं के निरन्तर अभ्यास के द्वारा व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक विकास में अद्‌भुत विकास का समावेश होता है।

प्राणायाम एवं ध्यानाभ्यास द्वारा मंद बुद्धि के छात्रों की एकाग्रता बढ़ती है जिससे बालकों में बुद्धि का विकास होता है जब शरीर में शक्ति होगी तो जीवन में उत्साह तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। जब जीवन में उत्साह होगा तो बच्चों के सारे कार्य बनेंगे यदि जीवन में उत्साह नही तो बने हुये कार्य भी बिगड़ जाते हैं यह सब योग द्वारा ही सम्भव है। इसी प्रकार षटकर्म की क्रियाओं से शरीर की शुद्धता, योगासनों से दृढ़ता मुद्राओं से स्थिरता, प्रत्याहार से धैर्य, प्राणायाम से हल्कापन इस क्रम को बनाये रखने से भी जीवन में अद्‌भुत विकास होता है।

योग के आठ अंगों के पालन के द्वारा बालकों के अन्दर स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का विकास एवं जीवन के विभिन्न पक्षों में ऐसा विकास होगा कि जीवन में स्वयं भी सुख और शांति का अनुभव तो करेंगे ही साथ ही प्राणीमात्र को सुख और शांति का दान दे सकेगें।

यदि जीवन में कुछ प्राप्त करने का उद्देश्य है तो वह योग शिक्षा के माध्यम से प्राप्त किया

जा सकता है।

छात्र जीवन में योग विद्या परम आवश्यक है। योग जीवन दर्शन है योग आत्म दर्शन की श्रेष्ठ विद्या है। योग सम्पूर्ण विद्या का खजाना है।

□□□

आश्रम समाचार

इस वर्ष महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का 129 वां प्राकट्य दिवस श्री सिद्धगुफा, सवांई में 3, 4 व 5 अप्रैल 2017 को बड़े ही हर्ष और उल्लास के साथ मनाया गया। इसी उपलक्ष्य में 29 मार्च से श्रीमद् भागवत महापुराण कथा एवं ज्ञान यज्ञ का कार्यक्रम रखा गया। कथा व्यास पं. पुरुषोत्तम शरण वृन्दावन वालों ने श्रीमद्भागवत कथा सुन्दर ढ़ँग से सुनाई।

वार्षिक उत्सव 3,4 व 5 अप्रैल को हर वर्षो की भाँति परम्परागत ढ़ँग से मनाया गया। 3 अप्रैल को प्रातः 9.30 बजे उत्सव की आरती हुई। प्रतिदिन गुरुगीता पाठ के बाद प्रवचन हुए। आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज, डॉ. विजय सिंह, और डॉ. वीरेन्द्र स्वरूप ने महाप्रभुजी के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला। तथा योग के क्षेत्र में उनकी महनीय भूमिका को बताया। महाप्रभुजी को बीसवीं शताब्दी के अलौकिक सिद्धयोगी बताते हुए वक्ताओं ने कहा कि आज महाप्रभुजी के शिष्यों के द्वारा स्थापित योग केन्द्र देश के विभिन्न प्रान्तों में योग प्रचार में लगे हुए हैं।

महाप्रभुजी की यौगिक शक्तियो के कारण उनको शिव स्वरूप मानने वाले भक्तों की बड़ी संख्या है।

दिनांक 4 अप्रैल 2017 को प्रवचन करने वालों में श्री सोमदत्त शर्मा सालवन, हरियाणा, श्री देवेन्द्र ब्रह्मचारी दिल्ली, तथा श्री जनार्दन पाण्डेय इलाहाबाद का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन वक्ताओं ने भी योग के गूढ़ रहस्यों को सरल शब्दों में बताने का प्रयास किया। अम्बाला से आये योग शिक्षक डॉ. वीरेन्द्र स्वरूप ने योगासन, प्राणायाम, कपालभाति आदि यौगिक क्रियाओं का सफल प्रशिक्षण साधकों को दिया। जिससे सैकड़ों लोग लाभान्वित हुए। साथ में नेति, धौति आदि षटकर्म की क्रियाओं का प्रदर्शन भी किया गया।

दिनांक 5 अप्रैल को प्रातः 9.30 बजे आरती के पश्चात् सभी गुरु भाईयों – बहनों ने लम्बी कतारों में पंक्ति बद्ध और अनुशासित होकर गुरु पूजन किया। दोपहर 12 बजे ब्रह्म भोज

के साथ ही विशाल भण्डारे का कार्यक्रम रखा गया था। दसियों हजार व्यक्तियों ने भण्डारे का प्रसाद ग्रहण किया। प्रतिदिन सायंकाल भजन सन्ध्या के कार्यक्रम में अनेक भजन मण्डलियों ने प्रस्तुति दी। 5 तारीख को पूरी रात जागरण हुआ।

दिनांक 6 अप्रैल को प्रातःकाल 4 बजे की मंगला आरती के साथ ही उत्सव के कार्यक्रम सम्पन्न हुए। उत्सव में हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार तथा उत्तरप्रदेश आदि प्रदेशों के विभिन्न क्षेत्रों से गुरु भक्त उत्सव में सम्मिलित हुए।

□□□

अनादि श्री सिद्ध–सिद्धेश्वर की योगमाया है।

राजीव कुमार, अम्बिकानगर

महाप्रभु अनादि श्री सिद्ध सिद्धेश्वर की सारी योगमाया है।
श्री सिद्धगुफा संवाई, योग प्रशिक्षण केन्द्र अनवरत् सजाया है।।
प्यारे गुरु भाई–बहनों दादा गुरुजी महाप्रभु का महा–पर्व आया है।
आओं ! चलो !! संवाई धाम,(129 वां योग–योगेश्वर का जन्मोत्सव) शुभ संदेश लाया है।।
विश्वव्यापी योग समागम–महासिद्धों ने अलख जगाया है।
श्रीचंदमोहन जी महाराज स्वयं विराजे, निमन्त्रण आया है।।
आश्रम नैसर्गिक प्राकृतिक कैवल्य–धाम संवाई ने हर्षाया है।
मोरों ने भी योगाश्रम इर्द–गिर्द नाच संवाई का वैभव बढ़ाया है।।
काल–कन्टक कट जायेगें, गुरुदेव जी की लीला न्यारी है।
योग–योगेश्वर महाप्रभु नेपाल वासी हम शरण–तिहारी हैं।।
सर्व–समर्थ का शुभ आशीर्वाद, हम सभी तर जायेगें।
अष्टांग सिद्ध योग, इह–उह लोक अधिकारी बन जायेंगे।।
जीवन की घड़ियाँ अनमोल मानुष जन्म पाया है।
जरा–जन्म का कटेगा फेरा, संवाई सुख–धाम बनाया है।
संवाई का रज प्रसाद ही योग जनित शान्ति दिलवायेगा।
अनादि सिद्ध महाप्रभु जी की तपस्थली संवाई, योग ऐश्वर्य पायेगा।।

□□□

हमारे आपके श्री सदगुरुदेव भगवान त्रिलोकी नाथ के स्वामी

अमरनाथ सक्सेना, शिवपुरी, म.प्र.

इस लेख को लिखने की प्रेरणा मेरे पूज्य वंदनीय बड़े भ्राता डॉ. विजय सिंह जी द्वारा, गुरुदेव द्वारा अपने सब शिष्यों पर किये जा रहे चमत्कारिक घटनाक्रमों के प्रकाशन, पूर्व में छपी हुई सिद्ध योग मासिक पत्रिका से प्राप्त हुई है।

दिनांक 11.11.1974 को मेरी स्वयं की शादी होने के लिये मैं स्वयं व रीवा से मेरे बड़े भाई श्री रामनाथ सक्सेना जी अपनी धर्म पत्नी श्रीमती कामिनी सक्सेना व बच्चों के साथ ग्वालियर में हमारी आदरणीय माताजी को लेकर एकत्रित हुए थे। मेरा पदांकन उस समय शिवपुरी म.प्र. शिक्षा विभाग में था। मेरी माताजी बड़े भाई साहब व भाभीजी के सथा रीवा जिले में जहाँ वह सिंचाई विभाग में इंजीनियर के पद पर कार्यरत थे, आये हुए थे। ग्वालियर में आते ही माता जी का स्वास्थ्य इतना ज्यादा बिगड़ गया कि सभी डॉक्टर्स के मुताबिक बताया गया कि उम्र के लिहाज से अब इनका अंतिम समय निकट आ गया है।

मेरी शादी जबकि 25 नवम्बर 1974 को होना तय थी, व 16 तारीख को लगुन व फलदान टीका होना था। उधर हमारी माताजी का स्वास्थ्य काफी तेज गति से बिगड़ता जा रहा था, उसी समय हमारी आदरणीय भाभीजी ने हम दोनों भाईयों को यह बताया कि हमारे पापाजी के यानि बड़े भाई साहब की ससुराल पक्ष से परम पूज्यनीय सदगुरुदेव भगवान, पूज्य स्वामी चंद्रमोहन जी महाराज ग्राम संवाई, एत्मादपुर जिला आगरा में रहते हैं। अगर तुम लोग वहां जाओ तो शायद ये संकट की घड़ी टल सकती है। तब मेरे बड़े भाई साहब का मुझे आदेश हुआ, मैं एवं हमारी भाभीजी के बड़े भाई श्री अनिल कंचन जी शाम को ग्वालियर से चलकर लगभग 5-6 बजे करीब संवाई धाम पहुँचे। मैंने उस समय पहली बार श्री सद्गुरुदेव भगवान के दर्शन किये थे। गुरुदेव कहीं योग प्रचार कार्यक्रम में जाने के लिए सफेद रंग की एम्बेसडर कार में सवार हो चुके थे। जब श्री गुरुदेव भगवान ने देखा कि कोई दो लड़के (उस समय मेरी उम्र 24 वर्ष की थी) आश्रम में आये हुए हैं तो गुरुदेव कार से उतरकर गुरुनिवास के सामने रखी आराम कुर्सी पर आकर विराजमान हो गये। मैं गुरुदेव भगवान के चरणों में सिर रखकर रोने लगा, गुरुजी ने मुझे उठाया और पूछा कि लल्ला क्या बात है ? मैंने सब वाक्या उन्हें ज्यों का त्यों बताया। मैंने कहा कि गुरुदेव माताजी की तबियत इतनी ज्यादा खराब है, बीमारी कुछ भी नहीं है पर ऐसा लगता कि हम रात में जब तक

ग्वालियर घर पहुंचेंगे, पता नहीं वो हमें मिलेंगी भी या नहीं यह आप ही जानें। गुरुदेव भगवान ने उसी समय शक्ति–पातित पुष्प प्रसाद देकर हमें आज्ञा प्रदान की कि लल्ला प्रभूजी के आशीर्वाद से तुम्हारे घर में होने वाले सभी मांगलिक कार्य निर्विघ्न होंगे, यह हमारा पूर्ण आशीर्वाद है।

हम लोग रात्रि में लगभग 11 बजे तक ग्वालियर वापिस आ गये, माताजी जिन्हें पानी पीना भी संभव नहीं था, वो पुष्प प्रसाद पानी से गुरुदेव की आज्ञा अनुसार खिलाया गया। सवेरे से माताजी पूर्ण स्वस्थ होकर चलने–फिरने लगीं व ऐसा लग ही नहीं रहा था कि हमारी माताजी कल तक इतनी अधिक अस्वस्थ थीं। 25 नवम्बर 1974 को मेरी शादी के उपरान्त मैं व मेरे बड़े भाई साहब और भाभीजी जब 2 दिसम्बर 1974 को अपने–अपने हैड क्वाटर अर्थात् मैं शिवपुरी व भाई साहब रीवा को जा रहे थे, माताजी की जीवन ज्योति प्रभू जी के चरण कमलों में समाहित हो गई। इस प्रकार से प्रथम दर्शन में परम समर्थ सद्गुरुदेव भगवान ने हमारी पूज्यनीय माताजी को जीवनदान देकर अपनी शक्तियों की अनुभूति करा दी।

इसी प्रकार गुरुदेव भगवान की कृपाएँ निरन्तर अपने भक्तों पर आज भी पूर्णरूपेण बरस रही हैं। मैं संक्षेप में श्री त्रिलोकीनाथ की कृपा का एक संक्षिप्त उल्लेख यहाँ और कर देना उचित समझता हूँ कि गुरुदेव भगवान के चमत्कार आज भी निरन्तर दिन दूने और रात चौगने अपने कृपा पात्र शिष्यों पर बरस रहे हैं।

हमारे यहाँ ग्वालियर में मेरे बड़े बेटे संकल्प की बहू अंशू के दिनांक 14 सितम्बर 2010 को बेटा पैदा हुआ था जिसके दोनों पंजे बिल्कुल तिरछे हुए थे जिससे हम लोग काफी चिन्तित थे, व हम अपने ग्रान्ड सन (पौत्र) होने की कोई खुशियाँ नहीं मना सके। लगभग 6 माह उस बच्चे का इलाज शासकीय डॉक्टर से कराया गया लेकिन कोई भी लाभ नजर नहीं आया। छः माह बाद सरकारी डॉक्टर ने कहा कि इसका माइनर ऑपरेशन करना पड़ेगा जिसकी स्वीकृति मैंने स्वयं डॉक्टर साहब को देकर ऑपरेशन की तिथि निर्धारित कर ली गई व इसकी सूचना मेरे द्वारा टेलीफोन से अपने बड़े बेटे संकल्प को दे दी। संकल्प जो उस समय एक्सिस बैंक दतिया में ब्रांच मैनेजर के पद पर कार्यरत था, उसने शिवपुरी में अपनी मां को टेलीफोन द्वारा यह बताया, मेरी पत्नी उस समय सायंकाल 7 बजे सद्गुरुदेव भगवान के सामने ध्यान की अवस्था में बैठी हुई थीं। ध्यान में स्वयं प्रभूजी ने उन्हें आदेश दिया कि कृष्णा (ग्रान्ड सन) को यहाँ शिवपुरी बुला लो व अभी उसे संवाई आश्रम (श्री सिद्धगुफा) की रज लगाओ, बिना ऑपरेशन के उसके पैर सीधे हो जायेंगे व रामनवमी पर इसे लेकर संवाई धाम में आकर माथा टेकना। श्री त्रिलोकीनाथ के द्वारा दिये गये ध्यान में आदेश का उसी क्षण हम लोगों के द्वारा अक्षरशः पालन किया गया, कृष्णा को उसकी माँ के साथ मैं कार से ग्वालियर से शिवपुरी लाया व मेरी पत्नी ने ध्यान के तेज आवेग में जो बैठी हुई थीं, आरती का रखा हुआ जल बड़ी बहू अंशू पर व कृष्णा पर खूब डाला, उस छः माह के बच्चे के पैरों में

जहाँ टेढ़ापन था, वहाँ रज लगाई गई, आज कृष्णा छः वर्ष से ऊपर हो गया है, उसके पैर हमारे त्रिलोकीनाथ के आशीर्वाद से बिल्कुल ठीक हैं व वह बढ़िया दौड़ता, खेलता कूदता है। ऐसे हैं हमारे सद्गुरुदेव भगवान के अलौकिक चमत्कार।

आज भी गुरुदेव की प्रत्येक परिवार के प्रत्येक बच्चे पर अलग–अलग इतनी कृपाएँ पहले से ज्यादा बरस रही हैं।

बोलिये श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय, महा प्रभू जी श्री रामलाल जी महाराज की जय।

□□□

पाठ से नहीं, पुरुषार्थ से गाड़ी चली

यदि मनुष्य का स्वयं का कुछ किया हुआ न हो तो स्वयं विधाता भी उसकी सहायता नहीं कर सकता, क्योंकि सृष्टि का विधान अटल है। जिस प्रकार विधान बनाने वाले विधायकों को स्वयं उसका पालन करना पड़ता है, वैसे ही ईश्वरीय अवतार और महापुरुष तो क्या स्वयंभगवान भी अपने बनाए विधानों का उल्लंघन नहीं कर सकते। इससे तो उनका सृष्टि संचालन ही अस्त–व्यस्त हो जायेगा। इस संबंध में उन लोगों को सचेत होकर अपना कर्म करना चाहिये जो सोचते हैं कि भगवान सब कर देंगे और स्वयं हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें।

एक आदमी श्री हनुमान का उपासक था। एक बार वह बैलगाड़ी लिए कहीं जा रहा था। गाड़ी कीचड़ में फंस गई, वह वहीं खड़ा होकर हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा और गाड़ी बाहर निकालने की कामना करने लगा। तभी उधर से आए एक पण्डित जी ने कहा – मित्र ! हनुमान जी संजीवनी का पता न चलने पर पहाड़ ही उखाड़ लाए थे, तुम कम से कम गाड़ी को हाथ तो लगाओ। आदमी ने थोड़ी ताकत लगाई और बैलगाड़ी बाहर खींच ले गया।

देवता हों या महापुरुष वे तब तक फल नहीं देते, जब तक मनुष्य स्वयं उन आदर्शो के परिपालन के लिए समुद्यत नही होता। कर्म विधान पर भी यही सिद्धान्त लागू होता है। ईश्वर उनका फल तब दे जब मनुष्य को बलवान बनाए, याचना भाव नहीं समर्पण भाव बढ़ाये।

साक्षी कोदण्डपाणि

श्री केशव उपाध्याय, वाराणसी

रुपये की माया सदा से मनुष्य को मोहित करती रहती है। मनुष्य ने कितना पाप, कितना छल, कितना विश्वासघात किया है और कर रहा है, इस रुपये के पीछे, कोई गणना नहीं है। यह घटना दक्षिण भारत के किसी जिले की है। इसका समय काल स्वतंत्रता प्राप्ति के आस–पास ही है।

एक गरीब ब्राह्मण के मन में तीर्थयात्रा करने का विचार आया। सम्पन्न और विश्वासी समझकर उसने अपनी सारी पूँजी एक प्रतिष्ठित सेठ के यहां रख दी और तीर्थ यात्रा करने चला गया। लिखा पढ़ी तब वैसे भी ज्यादा प्रचलित नहीं थी। अपने सरल विश्वास के कारण उसने (ब्राह्मण ने) एकान्त में ही अपना धन सेठ को दे दिया था। भारत में तब इस प्रकार का विश्वास बहुत ही सुलभ था।

जब वह ब्राह्मण अपनी तीर्थ यात्रा पूरी कर वापस लौटा तो सेठ के पास जाकर उसने अपनी पूँजी मांगी। सेठ के मन में लालच पैदा हो गया अतः उसने साफ–साफ इन्कार कर दिया और कह दिया कि आपकी कोई पूँजी हमारे पास नहीं है। सेठ ने अपशब्द कहते हुए कहा, 'क्या तुम हमें झूठा समझते हो, या बेईमान समझते हो बताओ कब दिया था तुमने हमें कुछ ?' पहले तो तुम सच्चे आदमी थे, क्या तीर्थ यात्रा के बाद असत्य भाषण आरम्भ कर दिया है।

बेचारा ब्राह्मण स्तम्भित सा हो गया अपमान और असत्य की वेदना सही नहीं गयी। न्यायालय पहुँचा, किन्तु न्यायालय को तो गवाह चाहिये, साक्षी चाहिये। न्यायालय ने जब उससे गवाह का नाम मांगा तो ब्राह्मण ने कहा, वैसे तो मैंने अपनी पूँजी एकान्त में ही दी थी परन्तु मेरे आराध्य 'कोदण्डपाणि' तो सर्वत्र व्याप्त हैं। अतः कोदण्डपाणि ही मेरे पक्ष के साक्षी हैं। सारा न्यायालय, वकील और उपस्थित समुदाय ब्राह्मण के सरल स्वभाव और अटूट ईश्वर भक्ति पर चकरा रहा था। न्यायालय ने ब्राह्मण के साक्षी कोदण्डपाणि के नाम न्यायालय में गवाही देने हेतु सम्मन जारी कर दिये।

कोदण्डपाणि नाम का कोई प्राणी तो था नहीं कि जिसे चपरासी जाकर सम्मन देता, परन्तु कोदण्डपाणि का मंदिर तो था ही। इस नाम का कोई व्यक्ति नहीं मिला तो चपरासी ने मंदिर के मुख्य द्वार पर सम्मन चिपका दिया। मुकदमे की पेशी हुई, न्यायाधीश के चपरासी ने अपने उच्च स्वर में कोदण्डपाणि की पुकार की।

आश्चर्य, महान आश्चर्य ! सरकारी गजट कहता है कि एक सांवला, अद्भुत सुन्दर नौजवान न्यायालय में उपस्थित हो गया। उसने अपना नाम 'कोदण्डपाणि' बतलाया। उसने शपथ लिया और बयान दिया। कोदण्डपाणि ने बतलाया कि प्रतिष्ठित सेठ के यहाँ अभी जांच कराई जाए, इनके यहाँ एक और रोकड़बही है और उस बही में वादा पं. जी की पूँजी जमा है। साक्षी

कोदण्डपाणि की सूचना के अनुसार तलाशी हुई। दूसरी रोकड़ बही मिली। प्रतिवादी को पूँजी के साथ अर्थ दण्ड भी देना पड़ा। इसके पश्चात् अपने बयान पर हस्ताक्षर करने के पूर्व ही " साक्षी कोदण्डपाणि " देखते देखते गायब हो चुके थे।

वादी की बात मत पूछिये। जिसकी दृढ़ श्रद्धा ने मन्दिर के आराध्य पीठ से, त्रिभुवन के स्वामी को न्यायालय में बुला लिया। उसकी स्थिति का वर्णन कोई क्या करेगा? प्रतिवादी का क्या हुआ, पता नहीं, किन्तु जज महोदय को इस घटना क्रम का प्रसाद मिल गया और वे पद त्याग कर अयोध्या आ गये तथा शेष जीवन भगवत् चिन्तन में व्यतीत किया।

• • •

यही क्या, कम है ?

प्रत्येक धर्म की कुछ न कुछ अपनी विशेषता होती है। हिन्दू धर्म ने विलक्षण भक्त और योगी पैदा किये, तो जैन धर्म ने अद्‌भुत तपस्वी। इसी प्रकार इस्लाम धर्म ने अपने खुदा के प्रति अटल श्रद्धा और विश्वास रखने वाले फकीर पैदा किये। प्रभु कृपा से इस्लाम धर्म अनुयायी, एक ऐसे ही अटूट विश्वासी फकीर का प्रसंग लिखने का प्रयास किया जा रहा है, जो अपनी तपस्या में भी अनोखा ही था।

यह प्रसंग है, एक फकीर का, जिसकी अवस्था अस्सी वर्ष के लगभग थी। उसके चेहरे पर झुर्रिया पड़ गयीं थीं तथा उसकी दाढ़ी के बाल बिल्कुल सफेद हो गये थे। उसका हाथ पैर कांप रहा था। करीब पचास वर्षों से वह अपना स्थान छोड़कर एक दिन के लिये भी अन्यत्र नहीं गया था। पत्थर की उस शिला पर, जिस पर वह नमाज पढ़ता था और सिजदा (प्रणाम) किया करता था, उसके सिजदा करते समय सिर रखने के कारण एक छोटा सा गड्ढा बन गया था। नखलिस्तान के रास्ते से गुजरने वाले, अरब निवासी, उसे जो कुछ खजूँर या ऊँटनी का दूध प्रदान किया करते थे, वही फकीर के जीवनयापन का एक मात्र साधन था।

लगभग पूरी अवस्था नमाज में व्यतीत कर देने वाले, इस बूढ़े फकीर से मजाक करने की बात, एक दिन एक फरिश्ते के मन में आयी। इसके पश्चात् घटना क्रम इस प्रकार घटित हुआ।

बूढ़े ने जो शाम की नमाज अदा करके सिर उठाया तो देखा कि उसके सामने चमकते पंखों वाला एक फरिश्ता खड़ा है।

फरिश्ते ने नाटकीय ढंग से कहा, " बेवकूफ बुड्ढे ! तू नाहक इतने दिनों से परेशान हो रहा है। तेरा कोई समाज, तेरी कोई सिजदा जब खुदा के पास पहुँचती है, तो तुझे नालायक समझकर खुदा उसे स्वीकार नहीं करता।"

फरिश्ते की बात सुनकर, वह बुड्ढा नमाजी मुसलमान खुशी से नाचने लगा। उसने फरिश्ते के दामन चूमे और फरिश्ते के चरणों में इतनी बार प्रणाम किया कि वह हक्का-बक्का रह गया। फकीर बारम्बार यही कहता रहा, या खुदा ! तेरा रहम मेरे मालिक, तू कितना दयालु है, तू

कितना कृपालु है। फरिश्ते को ऐसा लगा कि उसकी बात सुनकर नमाजी मुसलमान, खुदा के प्रेम में पागल हो गया।

नमाजी मुसलमान की स्थिति कुछ सामान्य होने पर, फरिश्ते ने उससे साश्चर्य प्रश्न किया "मगर तू इतना खुश क्यों हो रहा है ?"

बुड्ढे ने आनन्द सागर में प्रेम की डुबकी लगाकर प्रसन्नता से उत्तर दिया, " यही क्या कम है, कि मेरे खुदा को यह पता है कि एक नाचीज, उसे सिजदा कर रहा है। उसे नमाज अदा कर रहा है।"

फरिश्ते की आँखों देख रही थी और उससे देख लिया कि उस बुड्ढे फकीर पर खुदा के प्रेम का जलवा रोशन हो चुका था और तब वह मजाक करने को आया फरिश्ता, खुद (स्वयं) ही नमाजी मुसलमान को सिजदा करने के लिये आगे बढ़ गया।

नमाजी मुसलमान ने फरिश्ते से कहा, " खुदा क्या करता है, इससे मुझे क्या लेना – देना। मुझे जो करना चाहिये, मैं भरसक करता हूँ और यह मेरे मालिक (खुदा) को पता है, यह कम नहीं है।"

❑❑❑

ईश्वर विश्वास

भय का एक मुख्य कारण अपने अन्दर ईश्वर विश्वास का न होना है। हमें ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता पर विश्वास ही नहीं ईश्वर का अटल विश्वासी सदा निर्भय बना रहता है। उसे संसार की भयंकर से भयंकर शक्ति भी भयभीत नहीं कर सकती। वेद में कहा गया है–

सख्ये त इन्द्र ! वाजिनो मा भेम शवसस्पते।

हे सकल बलों के भण्डार इन्द्र ! हम तेरे मित्र बनकर संसार के किसी से भी न डरें।

गुरुदेव का प्रेम

श्री विष्णुप्रसाद व्यास

ईश्वर का प्रेम अपने हृदय में देखने के लिये सद्‌गुरु से प्रेम अति आवश्यक होता है। सद्‌गुरु प्रेम के सागर एवं भण्डार होते हैं। उनकी कृपा से ही जीव के हृदय में प्रेम की बहार दौड़ती है, और प्रेमी का रसिक हृदय आनन्द से अन्धा नहीं हो पाता। लोग कहते है पतंगे का प्रेम देखो। वह दीपक की लौ पर किस प्रकार आत्म–समर्पण कर बैठता है, किन्तु यह पतंगा तो अभी–अभी जहाँ, वह दीपक न जाने कब से जल रहा है, उसे जलता देखते ही पतंगा अपने को जला बैठता है। गुरु के हृदय में प्रेम का वही शाश्वत दीप जल रहा है, प्रेम की हस्ती प्रीतम से है।

गुरु के बिना प्रीति उत्पन्न नहीं होती, और न ही प्रेम की सम्पत्ति मिल सकती है। प्रभु प्रेम है और प्रभु स्वयं गुरु में है तथा गुरु प्रभु से मिलता है।

प्रेम की आग पहिले शमा के दिल में न जाने कब से जल रही है। यदि वह आग पहले से जली नहीं रहती तो परवाना उसमें जलकर खाक कैसे हो जाता। अतः गुरु की दया से ही प्रेम फूटता है। वही प्रेम का भण्डार है, जिसे प्रेम मिला है मालिक ने गुरु रूप में उसे दिया है। ईश्वर स्वयं कृपा करते हैं तो प्रेम दान देते हैं।

गुरु तो प्रेम पुँज हैं। किन्तु यह प्रेम–दान उसी को मिलता है जो गुरु की कृपा से गुरु–मुख बन जाता है। मन–मुख को यह अलौकिक प्रेम रस का स्वाद नहीं मिलता। गुरु मुख वही है जो गुरु की ओर चातकी आशा में बैठा है। पतंगे की तरह बिना सोचे समझे प्रेम की पीर में अपनी कुर्बानी कर देता है। जिसका मन प्रीतम के चरणों में लगा है और जो अपने को उसमें आत्मसात कर लेने को विवस है वही असल प्रेमी है।

परम पूज्य वन्दनीय अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज ऐसे ही परम प्रिय, प्रीतम एवं सद्‌गुरु हैं, उनका हृदय प्रेम से भरा है उनके तन में प्रेम, मन में प्रेम, रोम–रोम में प्रेम ही प्रेम भरा है। वे प्रेम के पुञ्ज हैं। अपने प्रीतम प्यारे श्री प्रभुजी के प्रेम में ऐसे लय हैं कि उनकी आँखों में वह सनातन प्रीतम स्वयं प्रेम बनकर छाये रहते हैं।

यही प्रेम की मदिरा सदा श्री गुरुदेव की आँखों से झलकती रहती है। जो कोई किसी बहाने उनकी संगति में क्षण भर को भी गया उनकी आँखों की मदिरा के नशे में चूर–चूर हो जाता है। पागल प्रेमी बन जाता है।

उस प्रेम की मदिरा में अमीर भी मस्त, गरीब भी मस्त, अपने भी मस्त, पराये भी मस्त, यार भी मस्त, गैर भी मस्त, सब लोग मस्त दिखाई देते हैं। जहाँ ये प्रीतम प्यारे रहते हैं, वहाँ की मिट्टी भी मस्त, पानी भी मस्त, हवा भी मस्त और अग्नि भी मस्त है।

अपनी हस्ती को इस तरह आपने छिपा कर रखा है, और अपने प्रभुजी में उसे लय कर दिया

है, कि उसमें स्वयं छिप गये और उनके गुरुदेव (प्रभुजी) उनमें प्रकट हो गये। यही प्रेम का असल तरीका है जिससे जीव ईश्वर रूप हो जाता है उसका अहम् समाप्त हो जाता है और परमात्मा ही परमात्मा उसे नजर आता है यही उसके हृदय में रह जाता है। अब उसके अन्तर में भी परमात्मा और बाहर भी परमात्मा दीख पड़ते हैं, क्योंकि अन्तर बाहर, सर्वत्र तो केवल वही एकमात्र परमात्मा ही है। इसे ही ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है–

"ऊँ पूर्णमद पूर्ण मिदं

पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते।

पूर्णास्य पूर्णमादाय

पूर्णमेवावशिष्यते।।"

अर्थात वह सच्चिदानन्द घन परब्रह्म पुरुषोत्तम सब प्रकार से सदा परिपूर्ण हैं। जगत भी उस परब्रह्म से ही है। क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्म की पूर्णता से जगत पूर्ण होने पर भी वह ब्रह्म परिपूर्ण है।

उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लेने पर भी वह पूर्ण ही बच रहता है। श्री गुरुदेव ने उपनिषद के इस परमात्मा तत्व को हृदयंगम किया और सद्‌गुरु में अपने को लय कर देने से ही यह स्थिति स्वयं उभर आती है। अहं का विसर्जन हो जाता है और यह सभी दृश्य जगत परमात्मा से ओत–प्रोत दिखाई पड़ता है। परमात्मा ही परमात्मा केवल शेष रह जाता है परमात्मा और जगत में अभेद हो जाता है।

परमात्मा तत्व को ग्रहण करने के लिए किसी ऐसे प्राणी की शरण पकड़ो, जो ईश्वर में लय हो चुका है उसकी कृपा से ही तुम अपना अहं, अपना द्वैव भाव विसर्जन कर सकोगे और ऐसा कर उसके प्रेम में तुम प्रेम रूप बन जावोगे।

उसने जो कुछ दिया है उसी को भोगो। अपने हृदय में उस दौलत की कल्पना को स्थान न हो जो अपनी नहीं है। प्रेम या हृदय समर्पण का यही गुण है। जिसमें यह गुण आ जाय उसको ही ज्ञान का अधिकार है। जो तृष्णा और इच्छाओं में फंसा है, उसे इतना पापी कहा ? प्रेम और ज्ञान ऊपर जाकर एक ही बन जाते हैं। प्रेम द्वारा इस ज्ञान को आत्म सत्व करेगा क्योंकि प्रेम ही सहज मार्ग है। अतः हे भाई प्रेमी बनो और सद्‌गुरु के प्रेम में अपने जीवन का कायाकल्प करलो।

तुलसीदास जी ने भी प्रेम को महत्ता दी है–

प्रेम किया तिनहीं प्रभु पायो।

बिना प्रेम कछु हाथ न आयो।

जिसने प्रेम किया, जो प्रेमी बना उसी को प्रभु प्रीतम के दर्शन हुए। जिसके हृदय में प्रभु की कली खिली ही नहीं वह मुर्दा है। उसमें कोई जीवन नहीं थिरकन नहीं। वह स्पंदन शून्य एवं शरीर प्राण बठा शव है। प्रेम दो दिलों को एक मेल कर देता और सच्चा अद्वैत वादी बना देता है

फिर उनका अलग होना कठिन है जैसे दूध–पानी एक रूप हो जाते हैं।

प्रेम–प्रेम सब कोई कहे, प्रेम न चीन्हें कोय।
आठ पहर भीना रहे, प्रेम कहावे सोय।।

प्रेम संसार का प्राण और हमारा जीवन रस है। श्री गुरुदेव के उस प्रेम स्वरूप में हम सभी स्वयं प्रेम रूप बन जाए। श्री गुरुदेव हम सब के हृदय के स्वामी है। उनसे ही प्रार्थना है कि हम सबके हृदय में उनका सच्चा प्रेम उतरे और हम सभी सच्चे रूप में उनके प्रेमी बन सकें।

' श्री गुरुदेव की कृपा से सब के जीवन में शान्ति उतरे। '

❑❑❑

परम पूज्य अनन्त श्री गुरुदेव के चरणों में

त्रिजुगी नरायन मिश्र

पुनर्जन्म का प्रश्न है ही नहीं,
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।
लक्ष्य दिखने लगा जिन्दगी का हमें,
चल रहा हूँ निरन्तर उसी ओर को।
ईश्वरोमुखी हृदय प्रभु हमारा करो,
लय अवस्था में लाना हमें आपको,
बन्धनों में रहूँ, है असम्भव बहुत,
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।
पुनर्जन्म का प्रश्न है ही नहीं,
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।
सतत् खोया रहूँ ध्यान में आपके,
ज्ञान वैराग्य, की मन में ज्योति जले।
चित्त की वृत्तियाँ संतुलित हों सभी,
भाव सम का हमारे हृदय में पले।

प्रभु मिलेगें हमें असम्भव कहाँ रह गया
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये
पुनर्जन्म का प्रश्न है ही नहीं
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये
एक तुम ही प्रभु शक्ति के द्वार हो
जिन्दगी के तुम्हीं एक आधार हो
तुम से ही है यह रोशन हुई जिन्दगी
अब अँधेरा कहाँ रह गया राह में
भ्रम जरा भी हृदय में रहा है नहीं
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।
पुनर्जन्म का प्रश्न है ही नहीं
जब तुम्हारे चरण की शरण पा गये।

योग से आत्मसाक्षात्कार

– राजकुमार रघुवंशी –

महर्षि पतंजलि ने योग की परिभाषा देते हुए कहा है कि चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है–

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। (पातंजलयोगदर्शन 1/2)

योग उन समस्त विधियों का प्रतिपादन करता है, जिससे साधक अपने प्रकृतिजन्य समस्त विकारों को दूर कर आत्मा के साथ संयुक्त होता है। इस आत्मस्वरूप की उपलब्धि के लिये वह शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार आदि का पूर्ण परिशोधनकर उन्हें इस योग्य बना देता है कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान सके तथा उसी में स्थित हो जाये। इन सबके लिये एक ही विधि है–चित्त की वृत्तियों का निरोध, जिसके लिये ये आठ साधन हैं–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,ध्यान तथा समाधि। इन साधनों के विधिवत् अनुष्ठान से मनुष्य परमपद को प्राप्त करता है।

योग संकल्प की साधना है, यह अपनी इन्द्रियों को वश में कर चेतन आत्मा से संयुक्त होने का विज्ञान है। यह एक अनुशासन है, मनुष्य के शरीर, इन्द्रियों, मन आदि को पूर्ण अनुशासित करने वाला विज्ञान है।

आत्मा चैतन्य है। वह द्रष्टा एवं साक्षी है, किंतु वह निष्क्रिय द्रष्टामात्र नहीं है। वह प्रकृतिजन्य किसी भी क्रिया में स्वयं भाग नहीं लेता, किंतु वह सभी क्रियाओं का कारण और उनकी प्रेरक शक्ति है, चित्त की शक्तियाँ जड़ हैं। जिनके निरोध से चैतन्य आत्मा अपने शुद्ध रूप में अवस्थित हो जाता है। यही कैवल्य अर्थात् मोक्ष की स्थिति है।

जिस प्रकार शुद्ध स्वर्ण में अन्य धातुओं के मिश्रण से विभिन्न प्रकार के स्वर्णाभूषण बनाये जाते हैं, किंतु उसका परिशोधनकर उसमें से मिश्रित पदार्थ निकालकर पुनः शुद्ध स्वर्ण प्राप्त किया जाता है। ऐसी ही प्रक्रिया योग की है, जिससे प्रकृति अन्य समस्त तत्वों को अलगकर शुद्ध आत्मतत्व की उपलब्धि करती है, इससे आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, जो उसका शुद्ध स्वरूप है।

आत्मा के स्वरूप में स्थित होने के लिए क्लिष्ट तथा अक्लिष्ट भेद से चित्त की पाँच वृत्तियाँ मानी गयी हैं–

1. प्रमाणवृत्ति– प्रमाणों के आधार पर किसी वस्तु के सत्यासत्य का निर्णय करना चित्त की प्रमाणवृत्ति है। यह वृत्ति इन्द्रियविषयों के पूर्वाभ्यास से सम्बन्धित विषयों के प्रसंग आने पर उभरती है।

2. विपर्ययवृत्ति– इस वृत्ति के कारण उसे कोई वस्तु जैसी है, वैसी न दिखायी देकर

उसमे अन्य वस्तु का भ्रम हो जाता है। जैसे रस्सी में साँप की भ्रान्ति हो जाना। वस्तुस्थिति की जानकारी न होने से उसका प्रतिकूल ज्ञान होता है, इससे वह असत् को सत् और सत् को असत् मानने लगता है।

3. विकल्पवृत्ति– इस वृत्ति के कारण वह किसी वस्तु के न होने पर भी उसकी कल्पना करता है। जैसे भय, आशंका, सन्देह, अशुभ, सम्भावना आदि की उपस्थिति के अभाव में भी उसकी कल्पना करना।

4. निद्रावृत्ति– जिसमें कुछ भी दिखायी न दे, किंतु उस अभाव की प्रतीति होती है। आलस्य, प्रमाद, उपेक्षा, अवसाद, अनुत्साह इसी वृत्ति के कारण होते हैं।

5. स्मृतिवृत्ति– इसके कारण जो देखा या जाना गया है, उसका पुनः स्मरण हो आता है।

योगसाधना का उद्देश्य उन दुष्प्रवृत्तियों के साथ संघर्ष करना है, जो पशुयोनियों से चली आ रही हैं। आत्मा के स्वरूप पर ये पशुवृत्तियाँ प्रभावी हो रही हैं। योग में इन्हीं के निरोध की बात कही गयी है, जिससे कि आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में प्रकट हो सके।

ईश्वर अथवा आत्मा कोई उपलब्ध होने वाली वस्तु नहीं है, वह तो नित्य उपलब्ध है ही। जिस प्रकार समुद्र में लहरों के कारण उसमें पड़ा चन्द्रमा का बिम्ब दिखायी नहीं देता, उसी प्रकार इस चित्त में नित्य उठ रही तरंगों के कारण उससे परे स्थित आत्मा दिखायी नहीं देता। योग शास्त्र में इसी को अविद्या कहा गया है, यदि इन वृत्तियों का योग–साधनों द्वारा निरोध कर दिया जाये तो ये संसार के भोगों की ओर से विमुख हो जाती हैं तथा शान्त हो जाती हैं। तब साधक को आत्मा के स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। आत्मज्ञान होने पर साधक को संसार से पूर्ण वैराग्य हो जाता है तथा वह स्वयं द्रष्टा–साक्षी बन जाता है।

महर्षि पतंजलि वृत्तियों के निरोध के दो उपाय बतलाते हैं– **अभ्यास** और **वैराग्य**। विषयों के प्रति जो आसक्ति है, उसका सर्वथा त्याग ही वैराग्य है–

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। (पातंजलयोगदर्शन 1/12)

घर छोड़कर जंगल चले जाना, भगवा वस्त्र पहनना, शरीर पर राख लपेट लेना, नग्न रहना आदि वैराग्य नहीं है, बल्कि सांसारिक विषयों के प्रति जो वासना है, आसक्ति है, लगाव है– इनका त्याग ही वैराग्य है। दूसरे शब्दों में वासना ही संसार है एवं उसका त्याग ही मुक्ति है। ये सांसारिक विषय ही दुःख के कारण हैं तथा अपने स्वरूप (आत्मा) में स्थित हो जाना ही परमानन्द की स्थिति है, इसीलिये महर्षि पतंजलि वैराग्य की बात कहते हैं। जो विषयों के प्रति आसक्ति का त्याग किये बिना योगाभ्यास करते हैं, वे पथभ्रष्ट ही होते हैं तथा पाखण्डी हो जाते हैं, इसलिए वैराग्यस्वरूप होकर निरन्तर मन की वृत्तियों को रोकने का अभ्यास करने से निश्चित ही साधक को आत्मज्ञान का सुख मिलता है, किंतु संसारी ठीक इसके विपरीत करता है, वह आत्मा और ईश्वर के प्रति वैराग्य किये हुए है तथा इन वृत्तियों को रोकने का नहीं, इनको और दृढ़ और विकसित करने का प्रयत्न कर रहा है। प्रकृति से जो कुछ मिला है, उसका अधिकाधिक उपयोग कर

रहा है, इससे संसार में तथाकथित विकास तो हुआ है, किंतु भोगवृत्ति तथा आसक्ति भी बढ़ गयी है, जिससे व्यक्ति दु:खी अधिक हुआ है।

सच्चा सुख तो आत्मज्ञान के बिना नहीं मिल सकता तथा इसके लिये वृत्तियों का निरोध आवश्यक है, जो निरन्तर अभ्यास और वैराग्य से ही सम्भव है।

भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में कहा है–हे महाबाहो! नि:सन्देह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है। परंतु हे कौन्तेय! अभ्यास और वैराग्य से यह वश में होता है। कर्म छोड़ना वैराग्य नहीं है, आसक्ति छोड़ना ही वैराग्य है।

आत्मज्ञान के लिये चित्त को बार–बार यत्नपूर्वक रोकने का निरन्तर अभ्यास करना आवश्यक है, इस अभ्यास में काल की कोई अवधि नहीं है। लम्बा समय भी लग सकता है, पूरा जीवन भी लग सकता है, इसलिये साधक में धैर्य होना चाहिए तथा यह भी दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि सत्प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं जाता। वह अगले जन्म में भी संस्कार रूप में विद्यमान रहेगा, जिससे आगे की साधना में प्रगति शीघ्र होगी। अभ्यास में व्यवधान भी नहीं आने देना चाहिए, वह नियमित एवं निरन्तर चलते रहना चाहिए।

आत्मा एक है, आत्मतत्वज्ञ पुरुष संसार के समस्त भूतों को आत्मा में तथा आत्मा को समस्त जीवों में देखता है, जिस प्रकार एक धागे में अनेक फूल पिरोये रहते हैं, उसी प्रकार एक ही आत्मा में समस्त भूतों (जीवों)– का निवास है। इस प्रकार समत्व भाव को प्राप्त हुए ज्ञानीजन अनुकूल परिस्थितियों में हर्षित नहीं होते तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में खिन्न नहीं होते। जो व्यक्ति आत्मा को समस्त भूतों में देखता है और आत्मा में सबको देखता है, वह किसी से द्वेष नहीं करता, ऐसा व्यक्ति शोक या मोह से दूर रहता है।

(कल्याण से साभार)

प्रेषक : श्री आर.बी. श्रीवास्तव, ग्वा.

❑❑❑

सर्वत्र ईश्वर की छवि निहारते रहना ज्ञानयोग है। निश्चल भाव से अपने को ईश्वर के हाथ सौंप देना भक्तियोग है और ईश्वर भाव से सभी प्राणियों के कल्याण के लिए निष्काम कर्म करते रहना कर्मयोग है। यह तभी सम्भव है जब अन्तरात्मा के दिव्य सूत्र में बुद्धि, मन और इन्द्रियों को गूँथ दिया जाय। ईश्वर सर्वव्यापक होने के कारण समस्त प्राणियों के हृदय में सदा विराजमान रहते हैं। अत: मन के द्वारा विषयों, धन एवं प्रभुत्व की आसक्ति का मानसिक त्याग कर पूर्ण समर्पण भाव से हृदयस्थ परमात्मा का चिंतन एवं आश्रय ग्रहण करने से शाश्वत् शान्ति सुलभ होगी।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, आलस्य एवं अहंकार का मूल कारण है देहाभिमान, उसी के कारण मनुष्य दु:खी है, अत: आत्मनिष्ठ बनो।

जन्म मरण छुड़वाया

जब से तुमने गीत (गुरुमन्त्र) सुनाया
मोर भयो मन नाच उठा है,
अद्‌भुत आनन्द आया।

आज सुना वह गीत आप से,
रोम–रोम हर्षाया।

आँख मूंद कछु न बोलू,
फिर भी जाता गाया।

अन्दर बाहर उलट पलटकर,
इस ने मार्ग बनाया।

यह मार्ग मेरे सतगुरु का,
बृजमोहन हर्षाया।

बलिहारी मैं गुरुदेव की
जन्म मरण छुड़वाया।

आचार्य ब्रह्मचारी
बृजमोहन वाशिष्ठ

❑❑❑

दह्यन्ते ध्यायानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

अर्थात् अग्नि से तपाये जाने पर जैसे धातु का मल जल जाता है, उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रियों के सारे दोष दग्ध हो जाते हैं।

(महाराज मनु)

योग–आसन

त्रिकोणासन

यह आसन भी पूर्ववत खड़े होकर ही किया जाता है, क्योंकि इसके करने से करने वाले के शरीर की आकृति त्रिभुजाकार बन जाती है। अतः इस आसन का नाम त्रिकोणासन है।

विधि

समान भाव से सीधे खड़े होकर अपने दोनों पैरों के मध्य में लगभग दो या तीन फुट का फासला कर दें। किन्तु पैरों के तनाव में कोई कमी न आये, इसके बाद अपने आप को बाईं ओर झुका दीजिए, अपने बायें हाथ को बिल्कुल तनाव के साथ नीचे की ओर लाकर अपने बायें पैर के अँगूठे को स्पर्श कीजिए। यह ख्याल अवश्य रखें कि पैर एवं स्पर्श करने वाले हाथ में कोई शिथिलता न आए (कोई सिकन न पड़े) उधर अपने दाहिने हाथ को सिर के ऊपर से घुमाकर तनाव के साथ बाईं ओर झुकाकर सीधा रखें। इसी प्रकार से दूसरी ओर के पैर व भुजा से अभ्यास कर, प्रथम दिन के अभ्यास में पैर का अँगूठा न भी छुआ जा सके तो भी कोई बात नहीं, किन्तु तनाव में कोई शिथिलता न आए, इसी का नाम त्रिकोणासन है।

लाभ

मेरुदण्ड पर तनाव पड़ने से रीढ़ की हड्डी में होने वाली बीमारियों के लिए लाभप्रद है। गृधसी आदि वायु इसके बराबर अभ्यास करने से दूर होती है। (गृध्रसीवात– जो वायु नितम्ब भाग से लेकर पाद तल तक बराबर कष्ट देती रहती है। बड़ा असह्य दर्द पैदा करती है। इसके अतिरिक्त उस गृध्रसी वायु के लिए यह आसन परम हितकर है) पाचन क्रिया सुधरती है, निरन्तर अभ्यास करने से भूख बढ़ने लगती है। शौच खुलासा होने लगता है। जिनको इस प्रकार की तकलीफ हो उनके लिए यह आसन परम श्रेयस्कर है।

'विज्ञातारमरे केन विजानीयात'

—: स्वामी विवेकानन्द :—

विज्ञातारमरे केन विजानीयात – विज्ञाता को कैसे जानोगे? ज्ञाता को कोई जान नहीं सकता, क्योंकि यदि वह समझ में आने योग्य होता , तो वह कभी ज्ञाता न रह जाता। और यदि तुम आइने में अपनी आँखों का विम्ब देखो, तो तुम उन्हें अपनी आँखें नहीं कह सकते, वे कुछ और ही हैं, वे विम्बमात्र हैं। अब बात यह है कि यदि यह आत्मा – यह अनन्त सर्वव्यापी पुरुष साक्षी मात्र हो , तो इससे क्या हुआ? यह हमारी तरह न चल फिर सकता है, न जीता है, न संसार का संभोग कर सकता है। यह बात लोगों की समझ में नहीं आती कि जो साक्षी स्वरूप है, वह किस तरह आनन्द का उपभोग कर सकता है। ''हे हिन्दुओ, तुम सब साक्षी स्वरूप हो, इस मत से तुम लोग निष्क्रिय और अकर्मण्य हो गये हो'' – यह बात लोग कहा करते हैं। उनकी इस बात का उत्तर यह है, 'जो साक्षी स्वरूप है, वही वास्तव में आनन्दोपभोग कर सकता है।' अगर कहीं कुश्ती लड़ी जाती है तो अधिक आनन्द किन्हें मिलता है? – जो कुश्ती लड़ रहे हैं उन्हें या जो दर्शक हैं उन्हें?

इस जीवन में जितना ही तुम किसी विषय में साक्षी स्वरूप हो सकोगे उतना ही तुम्हें उससे अधिक आनन्द मिलता रहेगा। यथार्थ आनन्द यही है और इस युक्ति से तुम्हारे लिए अनन्त आनन्द की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब तुम इस विश्व ब्रह्मांड के साक्षी स्वरूप हो सको। तभी मुक्त पुरुष हो सकोगे। जो साक्षी स्वरूप है, वही निष्काम भाव से स्वर्ग जाने की इच्छा न रख, निन्दा–स्तुति को समदृष्टि से देखता हुआ कार्य कर सकता है। जो साक्षी स्वरूप है, आनन्द वही पा सकता है, दूसरा नहीं। अद्वैतवाद के नैतिक भाग की विवेचना करते समय उसके दार्शनिक तथा नैतिक भाग के अन्तर्गत एक और विषय आ जाता है, वह मायावाद है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत एक एक विषय के समझने में ही वर्षों लग जाते हैं और व्याख्या करने में महीनों लग जाते हैं, इसलिए इसका मैं उल्लेख मात्र ही करूँगा। इस मायावाद को समझना सभी युगों में बड़ा कठिन रहा है। मैं तुमसे संक्षेप में कहता हुँ, मायावाद वास्तव में कोई वाद या मत विशेष नहीं है, वह देश, काल और निमित्त की समष्टि मात्र है – और इस देश, काल, निमित्त को आगे नाम–रूप में परिणत किया गया है। मान लो समुद्र में एक तरंग है। समुद्र से समुद्र की तरंगों का भेद सिर्फ नाम और रूप में है, और इस नाम और रूप की तरंग से पृथक कोई सत्ता भी नहीं है, नाम और रूप दोनों तरंग के साथ ही हैं, तरंगें विलीन हो जा सकती हैं; और तरंग में जो नाम रूप है, वे भी चाहे चिर काल के लिए विलीन हो जायें, पर पानी पहले की तरह सम मात्रा में ही बना रहेगा। इस प्रकार यह माया ही तुममें और हममें, पशुओं में और मनुष्यों में, देवताओं और मनुष्यों में भेदभाव पैदा करती है। सच तो यह है कि यह माया ही है जिसने आत्मा को मानो लाखों प्राणियों में बाँध रखा है और उनकी परस्पर भिन्नता का बोध नाम और रूप से ही होता है। यदि उनका त्याग कर दिया जाय, नाम और रूप दूर कर दिये जायें, तो वह सदा के लिए अन्तर्हित हो जायेगी, तब तुम वास्तव में जो कुछ हो, वही रह जाओगे। यही माया है। और फिर यह कोई सिद्धान्त भी नहीं है, केवल तथ्यों का कथन मात्र है।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/15-17 MAY 2017

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी पाक्षिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________

____

____

□□□□□□

ओज

जीवात्मा के भीतर देह में ओज सर्व अवयवों के भीतर समाया हुआ है। यदि इस ओज का नाश हो जाए तो जीवों के शरीर नष्ट हो जाते हैं। जिस तरह वायु में विद्युत है– योग में इसी को पर ओज की संज्ञा दी गई है।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा